RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC-II/CPM/04/KPHO/2017-19
प्रधान डाकघर कानपुर–डाक प्रेषण दिनांक 29/30

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/–

द्रविड़ भारत

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

सितम्बर–2017 | वर्ष – 09 | अंक : 08 | मूल्य : 5/–

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी–5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम हिन्दुस्तानी, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम–सराय, औरंगाबाद, पो.–बहादुरगढ़,जिला–झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.–रामटौरिया, जिला–छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट–III, बदरपुर, नई दिल्ली–44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.–1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला–अलवर–301001, मो. : 09887512360, 0144–3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला–अलवर, मो.–09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.–08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला–महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.–रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें –
भारतीय स्टेट बैंक, शाखा–नवीन मार्केट, कानपुर
खाता सं.–33496621020 • IFSC CODE-SBIN005307

अशोक विजयदशमी

वर्तमान में दशहरे का स्वरूप

यह पर्व आश्विन मास की शुक्ल–पक्ष की दशमी को मनाया जाता है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार इसी दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करके महाराजा रावण पर विजय प्राप्त की थी। अर्थात् राम ने रावण की हत्या की थी। विजयदशमी को राष्ट्रीय पर्व की मान्यता प्राप्त है। वैसे मुख्य रूप से यह हिन्दू वर्ण–व्यवस्था के आधार पर क्षत्रिय का त्योहार माना जाता है क्योंकि यहा वर्ण–व्यवस्था के आधार पर ही सब चीजों का बंटवारा निर्धारित है चाहे वह जन्म, कर्म हो या फिर रस्मो–रिवाज या त्योहार आदि ।

दशमी के दिन लगातार दस दिनों तक धमूधाम के साथ निकाली जाती है और रावण वध का प्रदर्शन होता है तथा मेले–तमाशे का आयोजन और दुर्गा पूजन होता है। उसी दिन हिन्दुओं के लिए नीलकठ पक्षी का दर्शन बड़ा शुभ माना जाता है।

दशहरे से जुड़ी हिन्दू मान्यताएं

दशहरे के सम्बंध में कही जाने वाली कुछ कथाएं इस प्रकार हैं–

1. एक बार पार्वती जी ने शंकर से पूछा कि ''लोगों में दशहरे का त्योहार प्रचलित है, इसका क्या फल है?'' तो शिवजी ने बताया कि ''आश्विन शुक्ल दशमी को सायंकाल में तारा उदय होने के समय 'विजय' नामक काल होता है जो सब इच्छाओं को पूर्ण करने वाला होता है। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए राजा को युद्ध के लिए इसी समय प्रस्थान करना चाहिए।'' इसकी पुष्टि हिन्दू ग्रंथ ज्योतिर्निबन्ध से भी होती है। इस दिन यदि श्रवण नक्षत्र का योग हो तो और भी शुभ है। रामचन्द्र जी ने इसी 'विजय–काल' में लंका के महाराजा रावण पर विजय पाई थी। इसलिए यह दिन हिन्दुओं के लिए बहुत बड़ी खुशी का पवित्र दिन माना जाता है। और क्षत्रिय लोग इसे अपना प्रमुख त्योहार मानते है क्योंकि रामचन्द्र भी क्षत्रिय थे।

हिन्दुओं की ऐसी मान्यता है कि शत्रु से युद्ध करने का प्रसंग न होने पर भी इस विजय–काल में राजाओं को अपनी सीमा का उल्लंघन अवश्य करना चाहिए । अपने तमाम दल–बल को सुसज्जित करके पूर्व दिशा में जाकर शमी वृक्ष का पूजन करना चाहिए । क्योंकि यह शमी वृक्ष सभी पापों को नष्ट करने वाला है तथा शत्रुओं को भी पराजय देने वाला है। इस वृक्ष ने अर्जुन के धनुष को धारण किया था और रामचन्द्र के लिए भी विजय की घोषणा की थी। पार्वती ने शमी वृक्ष के बारे में स्पष्टीकरण चाहा तो शिवजी ने उत्तर दिया ''दुर्योधन ने पांडावों को जुए में हराकर इस शर्त पर वनवास दिया था कि वे बारह वर्ष तक जैसे चाहें वैसे प्रकट रूप से वन में रह सकते हैं। लेकिन एक वर्ष बिलकुल अज्ञातवास में रहना होगा। यदि इस वर्ष में उन्हें कोई पहचान लेगा तो उन्हें बारह वर्ष और भी वनवास भोगना पड़ेगा। उस अज्ञातवास के समय अर्जुन अपना धनुष बाण इसी शमी वृक्ष पर रखकर राजा विराट के यहाँ बृहन्नला (हिजड़ा) के वेश में रहे थे। विराट के पुत्र कुमार ने गौओ की रक्षा के लिए बृहन्नला को अपने साथ लिया। शमी ने अर्जुन के शास्त्रों की रक्षा की थी और अर्जुन ने सही समय पर शस्त्र उठाकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी।''

विजय दशमी के दिन रामचन्द्र ने लंका पर चढ़ाई करने के लिए प्रस्थान करने के समय शमी वृक्ष ने कहा था कि आपकी विजय होगी। इसलिए उसी विजय काल में ही शमी वृक्ष की भी पूजा का महत्व है।

2. एक बार राजा युधिष्ठिर ने भी कृष्ण से विजयदशमी के बारे में पूछा तो कृष्ण ने बताया कि– ''हे राजन! विजयदशमी के दिन राजा को स्वयं अलंकृत होकर अपने दासों और हाथी, घोड़ों का श्रृंगार करना चाहिए तथा गाजे–बाजे के साथ मंगलाचरण करना चाहिए। उसे इस दिन अपने पुरोहितों को साथ लेकर पूर्व दिशा में प्रस्थान करके अपनी सीमा से बाहर जाना चाहिए और वहां शस्त्र–पूजा करके अष्टदिग्पालों तथा पार्थ देवता की वैदिक मंत्रों से पूजा करनी चाहिए। शत्रु की मूर्ति पुतला बनाकर उसकी दाती में बाण भेदना चाहिए तथा उसी समय पुरोहित से मंत्रों का उच्चारण करवाना चाहिए। ब्राह्मण की पूजा करके हाथी, घोड़ा, शस्त्र आदि का निरीक्षण करना चाहिए। यह सब क्रिया सीमान्त में करके अपने महल को वापस आना चाहिए जो राजा इस विधि से पूजन करके विजयदशमी की रस्म पूरी करता है वह सदा अपने शत्रु पर विजय प्राप्त करता है।'' हिन्दू धर्म में दशहरा (विजयदशमी) के लिए उपरोक्त प्रकार की मान्यताएं और कथाएं प्रचलित और मान्य हैं। किन्तु यह उनका अपना दृष्टिकोण है। जो हमने आपकी जानकारी के लिए उल्लेखित किया है।

वास्तविकता

आइए, अब हम दशहरे पर एक तर्कशील एवं बुद्धिवादी दृष्टिकोण रखते हुए उसके वास्तविकता स्वरूप को देखने–परखने का प्रयास करें।

भारत में दशहरे को हिन्दू लोग प्रायः दो तरीको से मनाते हैं। एक राम द्वारा रावण पर जीत कराके तथा दूसरे बड़े पैमाने पर देवी (दुर्गा) का पूजन करके। एक ही त्योहार में दोनों बातों का इतने बड़े पैमाने पर साझा प्रदर्शन होना किसी के लिए भी वास्तविक सच्चाई (कारण) जानने की उत्सुकता के साथ–साथ बहुत कठिनाई पैदा कर देते है। क्योंकि हिन्दू लोग स्वयं कारण कुछ बताते हैं लेकिन काम कुछ और ही करते नजर आते हैं। इस उपलक्ष्य में दस दिन पहले से ही हर गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में एक जगह रामलीला का प्रोग्राम तो होता ही है। लेकिन उससे भी आश्चर्य की बात यह है कि इस दशहरा की तैयारी में महीनों पहले से प्रत्येक गांव, मोहल्ले, गली, चौक, बाजार में जितना भी संभव हो सके उतनी संख्या में दुर्गा की मूर्तियाँ स्थापित की जाती हैं । इन मूर्ति स्थलों की संख्या रामलीला स्थलों से दस गुना ज्यादा होती है। आम तौर पर देखने में यह दुर्गा माता का ही कोई महत्वपूर्ण त्योहार नजर आता है लेकिन वास्तविकता रूप में इसे लोग राम से जोड़ते हैं। इस भूल–भूलैया की स्थिति से बाहर निकलकर हम जानने का प्रयास करेंगे कि इस त्योहार के पीछे की वास्तविक सच्चाई क्या है? दशहरा को लोग विजयदशमी का नाम क्यों देते हैं? इसके पीछे का इतिहास क्या है? तथा इसका इस देश के मूलनिवासी बौद्धों से क्या सम्बंध है ?

सम्राट अशोक और विजयदशमी का इतिहास

दशहरें के सम्बन्ध वास्तव में भारत के महान चक्रवर्ती सम्राट अशोक से है। महाराजा अशोक विश्वविख्यात महान शासक थे। उनका साम्राज्य बहुत विशाल था। किसी भी राज्य विस्तार के हिसाब से उनकी महानता को मापना ठीक नहीं। उनकी महानता तो उनके मानववादी सिद्धान्तों के कारण है। इन्हीं उच्च सिद्धान्तों के आधार पर ही उन्होंने शासन किया। अपने दसवें धम्म अभिलेख में उन्होंने कहा कि ''राजा की कीर्ति का मूल्यांकन प्रजा की नैतिक उन्नति से किया जा सकता है।'' यही कारण था कि सम्राट अशोक ने युद्ध का विनाशकारी मार्ग छोड़कर बुद्ध के शांतिपूर्ण मार्ग का अनुसरण किया ।

उन्होंने अपनी प्रजा को सद्धम्म के कल्याणकारी मार्ग पर चलने का आदेश दिया और अहिंसा तथा सदाचार को अपने जीवन का आदर्श बनाया। उनका उद्देश्य था प्रजा की सर्वोपरि उन्नति। वास्तव में वह समस्त विश्व के प्राणियों

का कल्याण चाहने वाले थे। जिसके लिए उन्होंने अपनी तरफ से कोई कसर नहीं छोड़ी। भारत की गौरवशाली कला और संस्कृति की शुरुआत भी सम्राट अशोक के समय से ही हुई। धम्म और बौद्ध स्तूपों की स्थापत्य कला इसके सर्वश्रेष्ठ प्रमाण हैं। उन्होंने आज से दो हजार वर्ष पूर्व भारत और पूरे विश्व को वही पाठ पढ़ाया जिसे आज संसार के सभी शांतिप्रिय देश संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से संचालित व क्रियान्वित करना चाहते हैं।

ऐसे महान सम्राट अशोक का जन्म इस पावन भारत भूमि पर अशोकावदान ग्रंथ के अनुसार लगभग 304 ईसा पूर्व चैत्र मास में शुक्ल–पक्ष की अष्टमी को हुआ था दिव्यावदान में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी मिलता है और उनके पिता का नाम बिन्दुसार था। जो मगध देश के राजा थे। जिनकी राजधानी पाटलिपुत्र थी। अशोक बचपन से कही तीव्र और कुशाग्र बुद्धि का धनी था। बड़ा होने के नाते शीघ्र ही उसने सभी शास्त्रों का ज्ञान अर्जित कर लिया था। अशोक के सौतेले भाईयों में सबसे बड़े भाई का नाम सुसीम था। इसलिए राजा का उत्तराधिकारी होने का हक उसी का था किन्तु अशोक की तीव्र बुद्धि को देखकर सभी अमात्य अशोक को ही उत्तराधिकारी बनाने के पक्ष में थे। इससे असमंजस में पड़े राजा को सभी राजकुमारों की परीक्षा लेकर भी सुसीम और अशोक दोनों को उत्तराधिकारी बनाना पड़ा। महाराजा बिन्दुसार ने सुसीम को उपराजा बनाकर तक्षशिला भेजा और अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता–पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक को उज्जैन के लिए रवाना किया। उज्जैन के रास्ते में ही विदिशा नगरी पड़ती थी। अशोक ने उज्जैन जाते समय यहीं पड़ाव डाला था। यहीं पर स्कन्धमित्रा की अशोक से मुलाकात हुई और स्कन्धमित्रा को देखकर अशोक बहुत प्रभावित हुआ। अशोक ने अपने आमात्यों से कहकर उसके माता–पिता का पता लगवाया और स्कन्धमित्रा को पसन्द करने की बात कही। यह जानकर नगर सेठ ने अपनी कन्या का विवाह कुमार अशोक के साथ कर दिया। वास्तव में यह कन्या शाक्य कुल से ही थी किन्तु परिस्थितिवश उसके पूर्वज विदिशा में आकर बस गए थे। यही देवी, विदिशा महादेवी के नाम से जानी जाती है। किन्तु वर्तमान सूत्रों के अनुसार महान अशोक की रानी का नाम असंधिमित्रा बताया जाता है।

अशोक असंधिमित्रा के साथ उज्जैन पहुँचे वहाँ की शासन स्थिति ठीक हुई। विवाह के एक वर्ष बाद रानी ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम महिंद (महेन्द्र) रखा गया । इसके दो वर्ष के बाद एक पुत्री का जन्म हुआ जिसका नाम संघमित्रा (संघमित्रा) रखा गया ।

कुछ समय पश्चात महाराज बिन्दुसार मरणासन्न अवस्था पर पड़ गए तो उस समय पाटलीपुत्र में न तो सुसीम था और न ही अशोक। महाराज बिन्दुसार की इच्छा थी की इस समय सुसीम ही उनका उत्तराधिकारी बने किन्तु उसके आमात्यों के विचारानुसार केवल अशोक ही योग्य उत्तराधिकारी हो सकता था। उन्होंने अशोक को तुरन्त उज्जैन से पाटलिपुत्र आने का संदेश भिजवाया । अशोक सन्देश पाते ही पाटलिपुत्र आ गया सुसीम को भी संदेश दिया गया था किन्तु वह अज्ञात कारणों से समय पर नहीं आ सका।

महाराजा ने जब देखा कि सुसीम का कहीं कोई अता–पता ही नहीं, केवल अशोक ही उसके पास है। राजा ने अपना अंतिम समय नजदीक आता देख अपने सिर से राजमुकुट उतारा और अशोक के सिर पर रख दिया। इस प्रकार आमात्यों के प्रयत्नों से अशोक को सम्राट का पद प्राप्त हुआ। अशोक के राजा बनते ही राजमहल मे खुशियाँ छा गई। अशोक सन् 273 ईसा पूर्व के लगभग 34 वर्ष की आयु में मगध के राज्य सिंहासन पर आसीन हुआ। जनता को अशोक की सामर्थ्य और शक्ति पर पूरा विश्वास था ।

अशोक के सम्राट बनने से राजधानी पाटलिपुत्र में उत्सव मनाया जाने लगा, किन्तु उपराजा सुसीम को जब यह समाचार मिला, तो वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने अपने सैनिको के साथ राजसिंहासन को बलपूर्वक हथियाने के लिए तक्षशिला से पाटलिपुत्र की ओर कूच कर दिया। कहते हैं कि अशोक ने पाटलिपुत्र के बाहर अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित सैनिकों को बिठा दिया। जैसे ही राजकुमार सुसीम ने पाटलिपुत्र की सीमा में प्रवेश किया अशोक के सैनिको ने उसे घेर कर मार गिराया। इस प्रकार अशोक के समक्ष अब कोई राज्य का दावेदार नही रहा और वह मगध के एकछत्र महाराजा बन गए ।

सम्राट अशोक के बड़े भाई उपराजा सुसीम की मृत्यु के समय उसकी रानी सुमना गर्भवती थी। उसने सोचा कि अशोक के सैनिक उसे भी मार डालेंगे इसलिए अपनी जान बचाने और गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए उसने एक चांडाल के घर जाकर शरण ली । कष्टों में जीवन निर्वाह करती हुई कुछ दिनो पश्चात् न्यग्रोध (वट=बरगद) के पेड के नीचे उसने एक पुत्र को जन्म दिया। गांव के एक मुखिया ने राजपरिवार के सदस्य होने के कारण माता–पुत्र दोनो की सात वर्ष तक अपने संरक्षण में रखकर सेवा की। न्यग्रोध वृक्ष के नीचे जन्म लेने के कारण इस बालक का नाम 'न्यग्रोध कुमार' पड़ा ।

उसके श्रामणेर होने के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उस युग में बौद्ध धर्म का अत्यधिक प्रचार था। अच्छे–अच्छे बौद्ध भिक्खु अपने त्यागमय जीवन और विद्वत्ता से लोगों को बौद्ध धर्म के प्रति आकर्षित कर रहे थे। अतः 'न्यग्रोध' भी विद्वान बौद्ध भिक्खुओं के संपर्क में रहकर बौद्ध बन गया । श्रीलंका के महावंस नामक बौद्ध ग्रंथ में न्यग्रोध के विषय में विस्तृत वर्णन मिलता है।

साभार
त्योहारों के रहस्य, रोशन बौद्ध
(पृ.सं. 11 से 15 तक)

प्राचीन हिंदू सेनाओं का मनोबल और उनका धर्म

जब हम भारत के प्राचीन इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डालते हैं तब पाते हैं कि यह पराजयों, घुटने टेकने, निराशा और विवशता की एक लंबी मगर दुखदायी दास्तान है, जिस के लिए काफी हद तक खुद हिंदू ही दोषी थे।

दरअसल असली दोषी था उनका वह धर्म, जिसने उन्हें पहले तो एक (मानव) से चार (वर्ण) बनाया, फिर हजारों उपजातियों में विभक्त किया, सब को अपने–अपने दायरों में रहने के लिए धार्मिक आदेशों व आज्ञाओं से विवश किया और शस्त्र उठाने का काम केवल एक वर्ण के जिम्मे सौंपा, उस वर्ण के भी केवल युवाओं के, जो बहुत ज्यादा नहीं हो सकते थे, इस जाति विभाजन ने परस्पर फूट और एक दूसरे के प्रति उदासीनता के विषबीज बोए तथा क्षुद्र स्वार्थों से हर एक को अभिभूत किया।

जो क्षत्रिय वर्ण शस्त्र उठाने का अधिकारी था, वह भी धर्म और धर्मशास्त्रों द्वारा पैदा व पुष्ट या अनुमोदित की गई रूढ़िवादिता के कारण कदम कदम पर पिटता रहा, मगर वह उस सारे आत्मघाती धार्मिक तानेबाने से मुक्त होने को कभी तैयार नहीं हुआ।

यही कारण है कि चतुरंगिनी सेना के नाम पर वह वर्ण हाथियों से चिपटा रहा, जो अनेक बार विजय को पराजय में बदलते रहे, जो शत्रु सेना का मुकाबला करने के स्थान पर अपने ही सैनिकों को पैरों तले रौंदते रहे और यह क्रम तब तक बराबर चलता रहा जब तक कि हिंदू धर्म के अनुयायी 1565 ईसवी में अंतिम युद्ध में हार कर पूर्णतया दास नहीं बन गए।

यदि हम पिछले एक हजार वर्ष की अवधि के युद्धों का जरा बारीकी से अध्ययन करें तो पता चलता है कि उपर्युक्त सब कमियों के बावजूद हिंदुओं का इतिहास और ही होता, यदि हिदूं योद्धा का, हिंदू सेना का, मनोबल बरकरार रहता।

मनोबल का अभाव

मनोबल का अभाव, अन्य बलों की उपस्थिति के बावजूद, पराजय लाता है और व्यक्तिगत वीरता के बावजूद हिंदू सेना में यह मनोबल सब से कम होता था।

पिछले एक हजार वर्षों के युद्धों के दौरान हिंदुओं के व्यवहार पर समय–समय पर टिप्पणियां करते हुए तत्कालीन मुसलिम इतिहासकारों ने लिखा है कि हिंदू सैनिकों को जब यह लगता था कि मुसलिम सेना अब विजय की ओर बढ़ रही है तो वे मैदान से भाग खड़े होते थे। ऐसे ही जब कोई महत्वपूर्ण चौकी रौंद दी जाती, जब प्रतिरक्षा का घेरा टूट जाता या राजा गंभीर रूप से घायल हो जाता या मर जाता, तो सेना अव्यवस्थित होकर भाग खड़ी होती थी।

इसके साथ ही मुसलिम इतिहासकारों ने यह भी लिखा है कि युद्ध में बंदी बनाया गया प्रायः हर राजा अपनी रानियों एवं दासियों सहित इस्लाम कबूलने के लिए सदा तत्पर दिखाई देता था।

इस तरह की टिप्पणियों के पीछे काम कर रहे उन इतिहासकारों के पूर्वाग्रहों की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता, लेकिन यह स्पष्ट है कि ऐसा सब कुछ होता रहा है।

991 ईसवी में सुबुक्तगीन ने हिंदू राजा जयपाल पर हमला किया, जिस का पंजाब के एक बड़े भाग के अलावा अफगानिस्तान के कुछ भाग पर भी राज था। लंघम नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में टक्कर हुइ। शुरू में ही सुबुक्तगीन का पलड़ा भारी हो गया।

इस पर हिंदू सैनिक मैदान छोड़ कर भाग खड़े हुए और अपने शस्त्र, रसद, यहां तक कि वाहन भी, छोड़ कर भागे ताकि विजेता विधर्मी तुर्कों से वे कहीं छू न जाएं।

इस युद्ध का वर्णन करते हुए इतिहासकार अलउत्बी ने लिखा है : 'हिंदू भयभीत कुत्तों की तरह दुम दबा कर भाग खड़े हुए और उन के राजा ने अपने दूरदराज तक फैले उत्तम प्रदेश विजेता को भेंद किए और कहा कि हमारे सिरों से केशों का न मुंडाया जाए।

'इस तरह आसपास का इलाका सुबुक्तगीन के सामने खुला और साफ था। उस ने वहां जी भर क धन लूटा' (देखें, सर एच. एम. एलियट और जान डाउसन कृत दि हिस्ट्री आफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंस, पृ. 23)

यह बात सर्वविदित है कि जयपाल ने सुबुक्तगीन से दो बार मुंह की खाई और दोनों बार बहुत धन एवं हाथी देकर अपनी जान बचाई थी। तीसरी बार जयपाल ने सुबुक्तगीन के पुत्र महमूद गजनवी से हार कर अग्नि में कूद कर आत्महस्या कर ली थी और वह लगभग पांच लाख भारतीय नरनारियों को गुलाम बना कर गजनी ले गया था।

इससे 28 वर्ष बाद के एक अन्य युद्ध को लें। 1018 ईसवी में महमूद गजनवी में मथुरा के राजा कुलचंद पर हमला किया। वह बहुत शक्तिशाली राजा था, जिसने इस हमले से पहले के वर्षों में अनेक हिंदू राजाओं को पराजित किया था। उसकी राजधानी बहुत सशक्त, धनधान्यपूर्ण एवं अनेक वीर योद्धाओं से सज्जित थी, उस में मजबूत किले और बहुत से हाथी थे, वह हर दृष्टि से शत्रु की पहुंच से बाहर थी। परंतु जब युद्ध हुआ तो वही कुछ दोहराया गया जो पहले लंघम में घटित हुआ था।

शहर के बाहरी दरवाजों पर दोनों ओर छोटी–छोटी टुकड़ियों में झड़पें हुईं, जिन में मुसलिम विजयी हुए।

हिंदू सेना ने घुटने टेके

अब भी बहुसंख्यक हिंदू सैनिक किले की देखभाल कर रहे थे, कुलचंद ने मार खा रहे सैनिकों की मदद और आक्रमणकारियों पर प्रत्याक्रमण के लिए सेना से नहीं कहा होगा, इसकी जरा भी संभावना नहीं। परंतु कुछ परिणाम निकला, बाहर शहर के किनारों पर हुई झड़पों में उखड़ जाने के शीघ्र ही बाद सारी हिंदू सेना ने घुटने टेक दिए।

इतिहासकार अलउत्बी ने लिखा है, ''हिंदुओं ने जब

देखा कि उनके प्रयत्न असफल हो रहे हैं तो वे किले को छोड़ कर भागे और उसकी एक ओर बह रहे दरिया को पार करने की कोशिश करने लगे, शायद यह सोचते हुए कि इसे पार करने के बाद कोई भय नहीं रहेगा।

''परंतु उन में से अनेक कत्ल कर दिए गए, पकड़ लिए गए या डूब गए। लगभग 50 हजार आदमी मरे, डूबे और पशुओं एवं मगरमच्छों के शिकार हुए। उधर कुलचद ने कटार से पहले अपनी पत्नी को कत्ल किया और बाद में आत्महत्या कर ली।'' (देखें, द हिस्ट्री आफ इंडिया ऐज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियंस, पृ. 43)।

300 साल बाद जब मुगल सेना को ले कर बाबर ने उत्तर भारत पर हमला किया तब भी हिंदू सेना ने उसी तरह का आचरण किया जैसा अतीत में हो चुका था। मार्च 1527 ईसवी में मेवाड़ के राजा सांगा की पराजय के बाद केवल एक राजपूत शक्ति बची थी–चंदेरी का मेदिनीराव। बाबर ने उस पर भी आक्रमण किया। 28 जनवरी, 1528 ईसवी को दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हुई। घेराबंदी के दूसरे ही दिन राजा मेदिनीराव इस निर्णय पर पहुंच गया कि मुगलों का मुकाबला करना बेकार है। अतः उसने लड़ाई बंद करने का फैसला किया।

किले के अंदर की सब स्त्रियों को मेदिनीराव के कहने पर उस के आदमियों ने कत्ल कर दिया। खुद मेदिनीराव और उसके सैनिक अपने वस्त्र उतार कर नंगे हो गए तथा बाबर के रक्तपिपासु सैनिकों की पंक्तियों की ओर दौड़ पड़े, क्योंकि इस धर्मभीरू हिंदू सैनिकों की नजरों में बंदी बन कर मुसलमानों के हाथों धर्मभ्रष्ट होने की अपेक्षा मृत्यु श्रेष्ठ थी। बाबर को अनायास ही विजयश्री प्राप्त हो गई। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है, ''मैंने बिना अपना झंडा उठाए, बिना रणभेरी बजाए और बिना अपने संपूर्ण शस्त्रों का प्रयोग किए यह प्रसिद्ध दुर्ग जीत लिया।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हिंदू सैनिका मुसलमानों का पलड़ा जरा सा भी भारी होते देख कर सिर पर पैर रख कर भाग खड़े होते थे या मुकाबला करने की अपेक्षा अपने अंधेरे भविष्य को अपनी ओर सरकता महसूस करके निराशा के भर कर आत्मघात पर उतारू हो जाते थे।

स्त्रियों को खुद ही कत्ल कर देते थे अथवा उन्हें आग में कूद कर आत्महत्या के लिए उकसाते थे। (आज तक इस जौहरप्रथा का उल्लेख सम्मानपूर्ण शब्दों के साथ किया जाता है) बाद में या तो वे आत्महत्या कर लेते थे या फिर आक्रमणकारियों के हाथों गाजर मूलियों की तरह कट जाते थे उनकी भरसक कोशिश होती थी कि बंदी बनने से जैसे भी हो, बच जाएं। चाहे मैदान से भाग कर या आत्मघाती कदम उठा कर।

जो हिंदू सैनिक या राजा बंदी हो जाते थे, वे छूट कर वापस हिंदुओं में आने के स्थान पर इस्लाम कबूल कर लेना बेहतर समझते थे। 1018 में जब महमूद गजनवी ने 12 वां हमला किया, तब की एक घटना है। वरन शहर पर हरदत्त नामक हिंदू राजा का राज्य था। महमूद ने उस पर हमला किया और विजयी रहा। राजा ने हथियार डाल दिए।

जब उसे इस्लाम कबूलने के लिए कहा गया तो उसने न केवलखुद को कबूल कर लिया, बल्कि अपने 10 हजार आदमियों से भी ऐसा ही करवाया। अलउत्बी लिखता है कि हरदत्त को इसी में अपना और अपने आदमियों का भला दिखाई दिया।

जैसे उदाहरण ऊपर दिए गए हैं, वैसे शायद इतिहास के पृष्ठों से और भी इकट्ठे किए जा सकें, लेकिन सारे इतिहास में शायद ऐसा उदाहरण एक भी न मिले जब किसी युद्ध में बंदी बनाए गए राजा ने मुसिलम विजेता की कैद से छूटने के बाद फिर से शक्ति संग्रह कर के आक्रमण किया हो या ऐसे राजा को हिंदुओं ने फिर से अपना नायक माना हो, हिंदु धर्म ने उसे पुनः पूर्ववत स्वीकार किया हो।

इसके विपरीत ऐसे उदाहरण अवश्य मिलते हैं कि किसी हिंदू राजा ने मुसिलम विजेता की कैद से निकल कर जब पुनः शक्ति संग्रह करना चाहा, उसे पगपग पर अपमानित किया गया, क्योंकि वह धर्मभ्रष्ट हो चुका था।

997 ईसवी में महमूद गजनवी ने जयपाल को पराजित कर बंदी बना लिया और बाद में उसे इस शर्त पर छोड़ दिया कि वह (जयपाल) उसे (महमूद को) वार्षिक कर दिया करेगा और उसे इस कदर जलील किया गया कि उसे तंग आकर अंत में आग में कूद कर आत्महत्या करनी पड़ी।

उत्साही प्रेरणा का अभाव

इसका क्या कारण है? कारण है धर्म। कहा जा सकता है कि धर्म तो मुसलमानों के भी साथ था, फिर हिंदुओं की शोचनीय स्थिति के लिए उनके धर्म को उत्तरदायी ठहराना कैसे उचित है? इस पर हमारा निवेदन है कि दोनों धर्मों के स्वभाव एक दूसरे से भिन्न हैं। इस कारण दोनों के अनुयायियों के इतिहास भी भिन्न–भिन्न दिशाओं में गए।

इस्लाम धर्म ने अपने अनुयायियों को प्रेरित किया, उत्साहित किया और उन के हौसले बुलंद रखे। जब हम मुस्लिम इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि हजरत मुहम्मद की मृत्यु के केवल 10 साल बाद के समय में कबायली मुसलमानों ने अरब में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था और उनकी मृत्यु के 100 साल बाद की अवधि में स्पेन, सिसिली, उत्तरी अफ्रीका, मिस्त्र, फिलिस्तीन, सीरिया, इराक, ईरान, खुरासान और सिंध तक उसकी सीमाएं फैल गई थीं।

इतने थोड़े समय में जीत पर जीत का क्या कारण था? इसका उत्तर देते हुए एक मुस्लिम इतिहासकर ने लिखा है, ''मुसलमानों की फारस (वर्तमान ईरान) और रोम पर विजय का मुख्य कारण उनका धार्मिक साहस और दृढ़ता थी। वे अपनी पूरी शक्ति से अपने धर्म अर्थात इस्लाम के लिए लड़े और इस के लिए मरमिटने को वे सदा तैयार रहते थे।

उनका विश्वास था कि इस्लाम के लिए मरना एक विशेष योग्यता है, यह पुण्य हर एक को प्राप्त नहीं होता। जो मुसलमान इस्लाम के लिए मरता है, अगली दुनिया में पुरस्कृत होता है। अतः वे शत्रु के हाथों पड़ने की अपेक्षा इस्लाम के लिए मरने को प्राथमिकता देते थे, जबकि उनके शत्रुओं के पास भविष्य के विषय में इस तरह के उत्साहदायी विचार नहीं थे। (प्रो. के. अली, ए स्टडी आफ इस्लामिक हिस्ट्री, तीसरा संशोधित संस्करण 1974, पृ. 101)

विपरीत भूमिका

1527 ईसवी में जब राणा सांगा की शक्ति के विषय में तरह–तरह की कहानियां और मुसलमानों की पराजय के विषय में मुहम्मद शरीफ नामक ज्योतिषी की भविष्यवाणी सुन कर बाबर की सेना का मनोबल गिर गया था, तब हिम्मत छोड़ चुकी सेना ने इस्लाम से प्रेरणा पा कर ही 10 घंटे की लड़ाई में राणा सांगा को मैदान से भाग कर जान बचाने के लिए मजबूर कर दिया जाता और विजय प्राप्त की थी।

बाबर ने अपने सैनिकों से कहा था, खुदा का शुक्र है यदि युद्ध में हम लोग मृत्यु को प्राप्त होंगे तो शहीद कहलाएंगे और यदि जीवित रहेंगे तो इस संसार का उपभोग करेंगे, आइए, हम सब 'कुरान' की शपथ ले कर प्रतिज्ञा करें कि हम उस समय तक युद्ध करते रहेंगे जिस समय तक हमारे शरीर में प्राण हैं।

इस पर सेना ने 'कुरान' की शपथ खा कर कहा था, 'आलीजाह जब तक हमारे शरीर में जान है, हम किसी प्रकार के बलिदान से मुंह नहीं मोड़ेंगे,''(देखें, बाबरनामा, अंग्रेजी अनु. एनेट सुसनाह बेररिज पृ. 556–57)।

लेकिन हिंदुओं के धर्म ने इसके बिलकुल विपरीत भूमिका निभाई। जब हिंदू सैनिक मुसलिम सेना के विरूद्ध लड़ता था तो उसे जब यह लगता कि अब विपक्षी सेना का पलड़ा भारी हो रहा है तो वह भाग खड़ा होता ताकि वह कहीं बंदी न बना लिया जाए और उसका धर्म भ्रष्ट न हो जाए। ऐसे में उसने जमकर लड़ने की तो कभी सोची भी नहीं। मुसिलम सैनिक को युद्ध के दौरान संतोष होता था कि वह इस्लाम के लिए कुछ कर रहा है।

मुस्लिम सैनिक जान हथेली पर रख कर इसलिए लड़ता था कि इस्लाम के लिए शहीद होने पर उसे उन्नति मिलेगी, वह पुरस्कृत होगा। हिंदू सैनिक अपने को इसलिए मरवाकटवा लेता था कि कहीं वह बंदी न बन जाए और हिंदू धर्म में अछूत का सा निंदनीय व नारकीय जीवन जीने से बच जाए।

तथ्य पर परदा

मुसलमान सैनिक लड़ता था तो उत्साह से और मरता था तो आशा और संतोष के साथ, लेकिन हिंदू सैनिक लड़ता था चिंताग्रस्त होकर और मरता था मजबूर होकर, अछूत का सा निंदित जीवन जीवने की यातना से बचने के प्रयास में।

ऐसे में हिंदू लोग मुसलमानों के मुकाबले में टिक ही कैसे सकते थे? आज इस कटु तथ्य पर परदा डालने के प्रयास में कई लोग इस अप्रिय घटनाचक्र पर मुलम्मा चढ़ा कर यह बताना चाह रहे हैं कि हिंदुओं ने कभी कुछ उठा न रखा था, वे बड़ी बहादुरी से लड़ते रहे और बाकी सब कुछ ठीक था।

लेकिन यह दूसरों को धोखा देने के साथ–साथ अपने से भी धोखा करना है और तो और, हमारे यहां हिंदू धर्म में शहीद के समकक्ष कोई शब्द तक नहीं है। असल में हिंदू सैनिक मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरूद्ध कभी जी जान से लड़ा ही नहीं, पूरे मन से कभी डटा ही नहीं। वह सदा चिंतित मन से और अंधे भविष्य की मनहूस छाया से ग्रस्त होकर यंत्रचालित सा ही लड़ा।

इसका कारण क्या था? मुसलिम इतिहासकारों ने इसके दो कारण लिखें हैं या तो वे जिंदगी से इतने ज्यादा चिपटे हुए थे कि शहीद की मौत मरने की उन में इच्छा ही नहीं थी या उन्हें यह ज्ञात हो जाता था कि हिंदू धर्म झूठा और पतनकारी है। हमारा कहना है कि ये दोनों ही कारण एकदम गलत है। हिंदु को न तो जीवन की ललक थी और न ही हिंदू धर्म पर अविश्वास।

आत्मा को अजरअमर मानने वाले और स्वर्ग प्राप्ति के लिए, काशी आदि में जाकर आत्महत्या तक करने वाले हिंदू को जीवन के मोह ने मैदान से भागने को नहीं उकसाया। उसके धर्म के प्रति अविश्वास की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसे तो मैदान से भागने को विवश किया उसके हिंदू धर्म पर दृढ़ विश्वास ने।

बात कुछ अटपटी सी लग सकती है, लेकिन है बिलकुल सच्ची कि हिंदू सैनिक हिंदू धर्म के प्रति अटूट विश्वास के कारण टूटा।

दुनिया में सब जगह जब युद्धबंदी शत्रु के यहां से वापस आता है तो उसके देश के लोग, उसके वंश और कबीले के लोग, उसके मित्र और परिचित लोग, यहां तक कि अपरिचित भी, उसका स्वागत करते हैं, प्रसन्न होते हैं और बांहें फैला कर उसे गले से लगाते हैं। लेकिन हिंदू धर्म का कहना था कि जो भी विधमियों अर्थात मुसलमानों की कैद में रह ले, वह अपवित्र हो जाता है।

अतः न उसके हाथ से कोई खाएगा, न उससे कोई रोटीबेटी का संबंध रखेगा, उसे जातिच्युत और जाति बहिष्कृत होकर उपेक्षित, घृणित एवं निंदनीय जीवन जीना होगा। इस अंधे भविष्य की कल्पनामा से हिन्दू सैनिक के पसीने छूट जाते थे और वह या तो मैदान से भाग खड़ा होता था या अपने को गाजर मूली की तरह कटवा कर छुटकारा पा लेता था।

जो इन दोनों में असफल हो जाने के बाद बंदी बना लिया जाता था, वह जानता था कि यदि कभी वह छूट भी गया तो समाज का उस के साथ कैसा व्यवहार होगा। इसलिए वह हिंदू समाज की ओर वापस आने की अपेक्षा इस्लाम को कबूल करना ही अच्छा समझता था।

अलबेरूनी ने हिंदुओं के इस छुईमुईपन पर टिप्पणी करते हुए 11वीं शताब्दी में लिखा था। 'जो वस्तु किसी विदेशी के जल या अग्नि से छू जाए, उसे भी वे (हिंदू) भ्रष्ट समझते हैं.... इसके अतिरिक्त उन्हें कभी इस बात की इच्छा ही नहीं होती कि जो वस्तु एक बार भ्रष्ट हो गई है, उसे शुद्ध कर के पुनः ग्रहण कर लें, जैसा कि सामान्य अवस्था में जब कोई पदार्थ अपवित्र हो जाता है तो फिर पवित्र अवस्था को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। जो मनुष्य उनमें से नहीं अर्थात जन्मजात हिंदू नहीं, चाहे वह

उनके धर्म की ओर कितना ही झुका हुआ क्यों न हो, और उसकी अभिलाषा कितना ही प्रबल क्यों न हो, उन्हें उसे अपने में मिलने की आज्ञा नहीं है। (अलबेरूनी का भारत, अनुवादक संतराम बी.ए., द्वितीय संस्करण 1926, भाग पहला, पृ. 24–25)

कठोर प्रायश्चित

अलबेरूनी अपने यात्रा विवरणों में अन्यत्र लिखता है, ''मैंने कई बार सुना है कि जब मुस्लिम देशों से हिंदू दास भाग कर अपने देश और धर्म में वापस जाते हैं, तब हिंदू उन्हें प्रायश्चित के रूप में उपवास करने के आदेश देते हैं, फिर वे उन्हें गाय के गोबर, मूत्र और दूध में दिनों की नियत संख्या तक दबाए रखते हैं, यहां तक कि उनका खमीर उठ आता है। तब वे उन को खींच कर उस मैल में से बाहर निकाल लेते हैं और वैसा ही मैल खाने को देते हैं।''

''मैंने ब्राह्मणों से पूछा है कि क्या यह सत्य है। परंतु वे इस से इन्कार करते हैं और कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति के लिए कोई भी प्रायश्चित संभव नहीं, और उसको जीवन की उन स्थितियों में लौट आने की कभी आज्ञा नहीं दी जाती जिन में वह बंदी के रूप में ले जाने से पहले था और वह कैसे संभव है? यदि ब्राह्मण शूद्र के घर में कई दिन तक खाता है तो वह अपने वर्ण से निकाल दिया जाता है और फिर कभी उसे प्राप्त नहीं कर सकता।'' (अलबेरूनी का भारत, भाग 3, प्रथम संस्करण 1928, पृ. 208)

अलबेरूनी ने ये बातें न तो कल्पना के सहारे लिखी हैं और न किसी दुराग्रहवश। हिंदी के प्रतिष्ठित व क्रांतिकारी लेखक यशपाल ने भी अपने उपन्यास 'झूठा सच' में यही दर्शाया है।

उसे पढ़ने पर पता चलता है कि 1947 के काले और सांप्रदायिकता के घातक विष से भरे दिनों में अपहृत युवतियों को कैसे उनके हिंदू मातापिताओं ने अपने घरों की तब देहरियां तक नहीं लांघने दी थी जब वे अपहरणकर्ता विधर्मियों के चंगुल से जैसे तैसे छूट कर वापस आई थी।

न अलबेरूनी झूठा है और न यशपाल। न हिंदू समाज की बंदी बन चुके सैनिक से शत्रुता थी, न उन मातापिताओं में संतान के प्रति प्रेम का अभाव था। यह सारा क्रूर खेल था उनके धर्म और धर्मग्रंथों के नकारात्मक आदेशों का। नीचे इस विषय में धर्मशास्त्रों के कुछ कथन प्रस्तुत हैं।

देवल स्मृति (रचनाकला 1000 ईसवी) का कहना है :

गृहीतो यो बलान् म्लेच्छैः पंच षट् सप्त वा समाः,
दशादि विंशतिं यावत्तस्य शुद्धिर्विधायते,
प्राजापत्यद्वयं तस्य शुद्धिरेषा विधीयते,
अतः परं नास्ति शुद्धिः कृच्छमेव सहोषिते
म्लैच्छैः सहोषितों यस्तु पंचप्रभृति विंशतिः,
वर्षाणि शुद्धिरेषोक्ता तस्य चांद्रायणद्वरम्
कक्षागुह्यशिरः श्मश्रु भ्रलोमपरिकृंतनम् प्राह्रत्य
पाणिपादानां नखलोग ततः शुचिः।

(देवल स्मृति, 53–56)

अर्थात जो व्यक्ति म्लेच्छों द्वारा बलपूर्वक पकड़ा गया हो और पांच, छः या सात वर्षों तक उनके पास रहा हो, लेकिन वह वर्जित व्यवहार, आचारविचार और खानपान में उनसे अलग रहा हो, वह शुद्ध हो सकता है (53). (इससे ज्यादा समय बीत जाने पर किसी भी प्रकार से वह शुद्ध नहीं हो सकता) वह व्यक्ति दो बार प्राजापत्य व्रत करके शुद्ध होता है।

वशिष्ठ स्मृति (23/24) ने इस व्रत का विधान ऐसे किया हैः पहले दिन केवल दिन में भोजन, दूसरे दिन केवल रात में, तीसरे दिन बिना मांगे मिल जाएं तो खाना अन्यथा भूखे रहना, चौथे दिन पूर्ण व्रत, इसी क्रम के मुताबिक तीन बार चलना।

शुद्धि की साधना

यदि बिना विवश किए अथवा सहमति से व्यक्ति म्लेच्छों के साथ रहता हुआ भी वर्जित आचार और खानपान के मामले में उनसे अलग रहा हो तो वह कृच्छ व्रत करे।

विधान : प्रथम तीन दिनों में दिन में एक बार भोजन करना, अगले तीन दिनों में केवल रात्रि में भोजन करना, आगे के तीन दिनों में बिना मांगे खाना अर्थात मिल जाए तो खाना नहीं तो भूखे रहना और आगे के तीन दिनों में पूरी तरह भूखे रहना। (54)

यदि पूर्वोक्त व्यक्ति म्लेच्छों के साथ पांच से 20 वर्ष तक रहा हो, वह दो चांद्रायण व्रत करें। (इस 30 दिन के व्रत के पांच भेद मिलते हैं, इसका यवमध्य नामक भेद ज्यादा प्रचलित है, जो इस प्रकार हैः मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन एक ग्रास भोजन किया जाता है। इसके बाद कृष्ण पक्ष के प्रथम दिन 14 ग्रास, दूसरे दिन 13 ग्रास और 15वें दिन अमावस्या को पूर्ण उपवास)। (55)

इसके साथ ही उस व्यक्ति की बगलों, गुप्तेंद्रियों, सिर, मूंछों, दाढ़ी, भौंहों तथा शरीर के अन्य रोओं को काट दिया जाए। उसके पैरों और हाथों के नखों को काफी बीच तक काट दिया जाए, तभी वह शुद्ध होगा।

म्लेच्छैहैतानां चौरैर्वा कांतारेषु प्रवासिनाम्
भुक्त्वा भक्ष्यमभक्ष्यं वा क्षुधार्तेन भ्येन वा।
पुनः प्राप्य स्वकं देशं चातुर्वर्ण्यस्य निष्कृतिः
कृच्छ्रमेकं चरेद् विप्र तदर्धं क्षात्रियश्चरेत् पादोनं च
चरेद् वैश्यः शूद्रः पादेन शुध्यति।

(देवल स्मृति 45–56)

अर्थात जब म्लेच्छों या आक्रमकारियों, चारों या जंगलियों द्वारा अपहृत व्यक्ति वंहा भूख या भय के कारण वर्जित भोजन करने के बाद अपने देश को लौटे तो उसे अपनी जाति के अनुसार प्रायश्चित करना पड़ेगा, ब्राह्मण पूरा कृच्छ्र व्रत करें, क्षत्रिय आधार कृच्छ्र, वैश्य पौना कृच्छू और शूद्र एक चौथाई कृच्छू व्रत करे।

म्लेच्छैहैतानां चौरैर्वा कान्तारे वा प्रवासिनाम्
भक्ष्याभक्ष्यविशुद्धयर्थं तेषां वक्ष्यामि निष्कृतिम्
पुनः प्राप्य स्वेदशं च वर्णानामनुपूर्वशः
कृच्छस्यार्धे ब्राह्मणस्तु पुनः संस्कारमर्हति
पादोनांते क्षत्रियस्तु अर्धार्धे वैश्य एव च.
पादं कृत्वा तथा शूद्रों दानं दत्वा विशुध्यति।

(विष्णुधर्मोत्तर पुराण 2/73/203–06)

अर्थात म्लेच्छों, चोरों और जंगलियों द्वारा अपहृत एवं वर्जित भोजन करने वाला व्यक्ति जब वापस अपने देश में आए तो निम्नलिखित के अनुसार प्रायश्चित करे, यथा, ब्राह्मण आधा कृच्छू करें और फिर से यज्ञोपवीत करे, वैश्य चौथाई कृच्छू करे एवं शूद्र चौथाई कृच्छू करे तथा दान दें।

चाण्डालानां सहस्रैस्तु सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः

('शुद्धि विवेचन' के पृ. 10 पर उद्धृत)

अर्थात तत्वज्ञों ने कहा है कि यवन 1000 चांडालों के समान होता है। यवन से नीच और कोई हो ही नहीं सकता।

बलाद् दासीकृता ये च म्लेच्छचाण्डालदस्युभिः,
अशुभं कारिताः कर्म गवादिप्राणिहिंसनम्।
उच्छिष्टमार्जनं चैव तथा तस्यैव भोजनम्,
खरोष्ट्रविड्वराहाणामाभिषस्य च भक्षणम्।
तत्स्त्रीणां व तथा संग ताभिश्च सह भोजनम्,
मासोषिते द्विजातौ तु प्राजापात्यं विशोधनम्।
चान्द्रायणं त्वाहिताग्नेः पराकस्त्वथ वा भवेत्,
चान्द्रायणं पराकं च चरेत् संवत्सरोषितः।
संवत्सरोषितः शूद्रों मासार्धं यावकं पिबेत्,
मासमात्रोषितः शूद्रः कृच्छूपादेन शुध्यति,
ऊर्ध्वं संवत्सरात् कल्प्यं प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमैः?
संवत्सरैश्चतुर्भिश्च तद् भावमधिगच्छति।

(देवल स्मृतिः 17–22)

अर्थात जब लोग म्लेच्छों, चांडालों एवं दस्युओं (डाकुओं) द्वारा बलात् दास बना लिए जाएं और उनसे गंदे काम कराए जाएं–यथा गो आदि पशुओं की हत्या, म्लेच्छों द्वारा छोड़ी गई जूठन को साफ करना, उनका जूठा खाना, गधे, ऊंट एवं गांवों में मिलने वाले सुअर का मांस खाना, म्लेच्छों की स्त्रियों से संभोग या उन के साथ भोजन करना आदि–तो इस अवस्था में एक मास तक रहने वाले द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिए प्रायश्चित केवल प्राजापत्य व्रत है।

वैदिक अग्नि में हवन करने वालों का, यदि वे एक मास या कुछ समय तक स्थिति में रहे हों, चांद्रायण अथवा पराक व्रत (इसमें 12 दिनों तक बिना भोजन किए रहना पड़ता है) करने से प्रायश्चित होता है। एक वर्ष उक्त स्थिति में रह जाने वाला चांद्रायण एवं पराक दोनों व्रत करे, एक मास तक रहने वाला शूद्र कृच्छू पाद व्रत (इस में व्यक्ति पहले दिन केवल एक बार, अगले दिन केवल रात में, तीसरे दिन बिना मांगे मिल जाए तो भोजन कर ले, अन्यथा नहीं, चौथे दिन पूर्ण व्रत रखे) करें।

इस स्थिति में एक वर्ष तक रहने वाला शूद्र यावक पान (गोबर में से जौ ढूंढ़ कर, उन्हें उबाल कर सात या 15 या 30 दिन खाना) व्रत करें। यदि उपर्युक्त स्थितियों में म्लेच्छों के साथ रहते एक वर्ष से ज्यादा समय बीत जाए तो विद्वान ही निर्णय दे सकते हैं। यदि उनके साथ रहते चार वर्ष हो जाएं तो वह उन जैसा ही हो जाता है।

पराजय का कारण केवल धर्म

'प्रायश्चित–विवेक' (लेखक का समय 1375/1440 ईसवी) में कहा गया हैं, ''चार वर्ष बीत जाने पर मृत्यु ही पवित्र कर सकती है'' (पृ. 456)

यहां यह बताने की जरूरत नहीं कि हर हिंदू को यह पूरी तरह स्पष्ट था कि आक्रमणकारी मुसलमान उसे पकड़े जाने पर बुरी तरह जलील करेंगे, उसे दास बनाएंगे या आगे बेच देंगे, उससे अपनी जूठन उठवाएंगे और उसे खिलवाएंगे भी। इस बात का तो कोई पागलपन की सीमा तक आशावादी भी स्वप्न नहीं ले सकता था कि उसके लिए गोबर का चौका लगाकर, साफ धोती और जनेऊ पहनकर रसोइया शुद्ध हिंदू भोजन बनाएगा और वह धार्मिक नखरों से उसे खाकर अपने 'धर्म' की रक्षा कर सकेगा।

अतः हर हिंदू युद्धबंदी बनने की अपेक्षा मृत्यु को प्राथमिकता देता था और युद्ध में बंदी बनकर वापसी पर, यदि वह कभी संभव हो, हिंदू धर्म और समाज के हाथों जलील होता था, क्योंकि उपर्युक्त प्रायश्चितों के बावजूद उसका सामाजिक बहिष्कार यथापूर्व बना रहता था, न उसके साथ किसी हिंदू का रोटीबेटी का संबंध रहता था, न कोई उसके सुख दुख का साथी बनता था, क्योंकि निम्नलिखित प्रकार की धर्मशास्त्रीय उक्तियां सदा हिंदुओं का मार्गदर्शन करती रहीं।

कृतेऽपि प्रायश्चित्ते न व्यवहार्यता। (कालराम शास्त्री रचित शुद्धि निर्णय (1926 ईसवी) के पृ. 7 पर उद्धृत)

अर्थात प्रायश्चित कर लेने पर भी व्यवहार बंद रहेगा।

विशुद्धानपि धर्मतः त संवसेत् (मनु 11–190)

अर्थात जिन्होंने प्रायश्चित कर लिया हो, उनसे भी किसी प्रकार का संपर्क न रखे।

संवसेन्न तु चीर्णव्रतानपि (याज्ञवल्क्य स्मृति 3–298)

अर्थात प्रायश्चित कर लेने से जिनके पाप कमजोर पड़ गए हों, उन लोगों से भी समाजिक संबंध न रखे।

धार्मिक प्रतिबंधों के कारण जिस देश की आबादी का केवल एक वर्ग ही शस्त्रों को छू सकता हो, (केवल क्षत्रिय, उनमें से भी केवल युवा लड़ेंगे वृद्ध, बच्चे और स्त्रियां नहीं) उसकी भी टांग जहां धर्म बराबर पीछे की ओर खींच रहा हो, उसका कदम–कदम पर मनोबल गिरा रहा हो, उस देश की विदेशी आक्रमणकारियों से रक्षा हो ही कैसे सकती है? ऐसे में उन आक्रमणकारियों द्वारा उस धर्म के न अपनाने व उसके विनाश करने को लेकर हायतोबा मचाने का अर्थ ही क्या रह जाता है? होना तो इसके बिलकुल विपरीत चाहिए, ऐसे धर्म के 'स्वर्ग सिधारने' पर हर्ष होना चाहिए, न कि शोक, क्योंकि उसकी मृत्यु में ही उसके अनुयायियों का नवजीवन निहित है।

साभार – हिंदू इतिहास हारों की दास्तान
पृष्ठ सं. 85 से 100
डॉ. सुरेंद्र कुमार शर्मा 'अज्ञात'

शिशु–हत्या

अपने बच्चों को मार डालने की पैशाचिक–प्रथा संसार की अनेक कौमों में काफी समय से प्रचलित है। चीन, उत्तरी अमेरिका, अरब, न्यूजीलैंड, यूनान, हिन्दूस्तान और अन्य देशों के इतिहास में इसका जिक्र मिलता है। यूनान को छोड़कर अन्य देशों के समस्त महान–पुरूषों ने इस पैशाचिक–प्रथा को निन्दनीय करार दिया है। चीन में कन्फ्यूशियस ने, अरब में मुहम्मद साहब ने और हिन्दुस्तान में शास्त्रों ने शिशु–हत्या को दण्डनीय माना है। किन्तु यूनान में इसके न करने पर सजा दी जाती थी। यूनान देश के प्रमुख शास्त्रकार लाइकरगस का यह आदेश कि जो बच्चा दुर्बल या अपंग हो, उसको जरूर ऐसी जगह छोड़ देना चाहिए, जहाँ वह मर जाए। इसकी वजह यह थी कि लाइकरगस अपने देश में निर्बल और शरीर से रूग्ण और अपंग आदमी नहीं रखना चाहता था। यहूदी लोगों का एक समूह मोलक देवता को अपने पापों की क्षमा के लिए अपने ज्येष्ठ–पुत्र को अर्पित कर देता था। मोलक देवता की मूर्ति बड़ी भारी मूर्ति थी। यह कुर्सी पर बैठा रहता था और उसके पेट के अन्दर अग्नि चला करती थी तथा मुँह से धुआँ निकलता था। जिनको अपना बच्चा बलि चढ़ाना होता था, वह इस देवता के पेट में जीवित बच्चे डाल आते थे।

बंगाल में हुगली नदी के किनारे पर बंगाली लोग अपने बच्चों को अपने पापों की मुक्ति के लिए और अपने भावी कल्याण के लिए गंगा नदी में डाल आया करते थे। वहाँ पर मगरमच्छ और घड़ियाल बच्चों को गिरते ही निगल जाते थे।

किन्तु जिस शिशु–हत्या का वर्णन मैं इस लेख में करना चाहता हूँ, वह हिस्दुस्तान की चन्द जातियों में चिरकाल से आई हुई एक प्रथा थी और जिसके प्रभाव से लड़कियाँ समूल नष्ट हो जाती थीं।

हिन्दुस्तान के करीब–करीब सभी भागों में और करीब–करीब सभी राजपूत कौमों में लड़कियों को मार डालने की एक प्रथा बहुत दिनों से चली आ रही थी। यह प्रथा कैसे चली और कब चली, मैं इस बारे में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहना चाहता, किन्तु स्वयं राजपूतों ने जो उसके कारण बताये हैं, उनका उल्लेख यहाँ कर दूँगा। राजपूतों के एक वंश का यह कथन है कि ब्रह्मा ने राजपूतों को यह शाप दिया था कि राजपूतों का नाश उसकी कन्या की सन्तान से होगा, इसलिए उस समय से राजपूतों ने कन्याओं को मारना आरम्भ कर दिया। गुजरात के जारेजाह लोग कहते हैं कि उनके वंश के एक राजा की कन्या बड़ी रूपवती थी, उसके लिए उन्होंने बहुत वर तलाश किए, किन्तु कोई योग्य वर न मिल सका। इस पर अपमान अनुभव करके उन्होंने अपनी लड़की को मरवा डाला। वे जारेजाहों को यह वसीयत कर गए कि वह अपनी सब लड़कियाँ मार डाला करें। छआवे के चौहान लोगों का यह कथन है कि किसी चौहान राजा को उसके दामाद ने बहुत सताया और उसे बार–बार ससुर होने का आभास कराके अपमानित करता रहा, जिससे आजिज आकर चौहान राजा अपने सब लड़कों को यह वसीयत कर गए कि उनके वंश में कोई भी लड़की जिन्दा न रहने पावे।

किन्तु वास्तविक कारण यह था कि इन क्षत्रिय जातियों को अपनी जाति पर बहुत अभिमान था। अपने से नीच जाति में यह अपनी लड़कियों की शादी नहीं कर सकते थे, इसलिए जो जातियाँ ऊँची होती थीं, अपने को अपमानित किए बिना, अपनी लड़कियों की शादी का कोई हिसाब न देखकर उनको पैदा होते ही मार डालते थे। दूसरी बात यह थी कि हिन्दू–समाज में लड़की वाले को लड़के वाले इस तरह खामखाह के लिए बेइज्जत करना चाहते हैं और केवल इसलिए कि वह लड़कीवाला है, उसे इतनी हिकारत की निगाह से देखते हैं कि हर एक आत्मसम्मानी आदमी लड़की का पैदा होना अपनी बेइज्जती का वायस मानता है–साला और ससुरा बनना कोई पसन्द नहीं करता। साला और ससुरा हिन्दू–समाज में एक हिकारत की चीज है, इसलिए भी लड़की की पैदाइश खानदान के लिए एक आफत थी।

तीसरा कारण यह था कि विवाह के खर्च इतने ज्यादा होते थे और भाट और चारण लोग निन्दा और स्तुति के ऐर–फेर में इतना रूपए वसूल कर लेते थे कि जिसके यहाँ दो–तीन लड़कियाँ हो गईं, समझिये उसका घर लुट गया। बड़े–बड़े राजे–महाराजे तो चाहे इस खर्च को बर्दाश्त भी कर लें, लेकिन साधारण स्थिति के आदमी के लिए यह बड़ा कठिन काम था। इन्हीं कई धारणाओं के कारण हिन्दुस्तान में लड़कियों की हत्या की प्रथा जारी थी।

लड़कियों की हत्या कैसे की जाती थी?

जब लड़की पैदा होती थी तो उसके तालू में अफीम या भाँग की छोटी–सी गोली चिपका दी जाती थी और वह हमेशा के लिए सुला दी जाती थी। अगर अफीम या भाँग न मिल सके तो धूतरे के बीज को या मदार को पीसकर माता के स्तन पर लेप कर दिया जाता था और लड़की दूध के साथ इस जहर को पीकर मर जाती थी। कुछ राजपूत लोग जमीन में एक गड्ढा खोदते थे और उसमें दूध भर देते थे। इसी दूध भरे गड्ढे में लड़की लिटा दी जाती थी और वह दूध में डूबकर मर जाती थी। कुछ लोग तो उस गड्ढे में जरा भी दूध नहीं डालते थे और लड़कियों को जीते जी ही दफन कर देते थे। कुछ लोग पैदा होते ही जब बच्चा साँस भी नहीं लेने पाता था, उसकी नार से गला घोंट देते थे। यह सब काम अक्सर माताओं को अपने हाथ से ही करना पड़ता था।

शिशु–हत्या हिन्दुस्तान में बहुत दिनों से चली आ रही थी। **जहाँगीर बादशाह** ने इस पैशाचिक रस्म को बन्द करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वह सफल न हुआ। इसकी मृत्यु के 100 वर्ष बाद जयपुर के महाराज जयसिंह ने भी इस कुप्रथा को मिटाने का प्रयत्न किया था, किन्तु उनको भी सफलता न मिली। जब अंग्रेजों का राज्य हिन्दुस्तान में कायम हुआ और उनका शासन–दण्ड चलने लगा, तब उन्होंने इस कुप्रथा के नाश का तरीका सोचना शुरू किया।

संयुक्त प्रान्त के पूर्वी भाग

पहले–पहल सन् 1804 में और फिर 30 जुलाई, 1809 में बरेली–कोर्ट ऑफ सरकार ने इस कुप्रथा को जुर्म करार देने की एक घोषणा प्रकाशित की, किन्तु इसके बाद भी यह कुप्रथा ज्यों की त्यों जारी रही। 1836 में आजमगढ के मजिस्ट्रेट मि. टॉम्सन का इस ओर ध्यान गया और अपने जिले के राजपूतों में इस जुर्म का प्रचार देखकर उन्होंने इसे दबाने का प्रयत्न आरम्भ किया। वायस, रघुवंशी और गौतमी ठाकुरों में यह प्रथा बड़े जोरों से जारी थी। दस हजार राजपूतों की बस्ती में एक भी लड़की नहीं मिल सकती थी।

मि. टॉम्सन ने यह अच्छी तरह देख लिया कि पुलिस अकेली इस जुर्म को न दबा सकेगी, इसलिए उन्होंने सोचा कि अपने व्यक्तिगत दबाव में समझा–बुझाकर और अन्य तरीकों से जोर डालकर ही यह कुप्रथा मिटाई जा सकती है, और उन्होंने इसी तरीके से इस कुप्रथा को मिटाने का प्रयत्न किया।

इलाहाबाद जिले की बारा तहसील में पुरहर, कचवा और बेदौरिया राजपूतों में यह कुप्रथा बड़े जोरों पर थी। 1839 में मि. आर. मोन्टेगोमरी इस जिले के मजिस्ट्रेट थे, उन्होंने इसको दबाना चाहा। उन्होंने राजपूतों को समझा–बुझाकर इस काम को मिटाने का प्रयत्न भी किया, किन्तु सफल न हुए। तब इन्होंने एक–एक चपरासी हर गाँव में मुकरर्र करा दिया, जिसका काम ही यह था कि उपरोक्त तीन जातियों में अगर किसी के यहाँ लड़की पैदा हो तो उसकी उन्हें रिपोर्ट करें। साथ ही साथ गोडदूत, चौकीदार और दाइयों को यह हुक्म दिया कि जहाँ–जहाँ लड़कियाँ पैदा हों, उसकी इत्तला थाने में की जाएँ और फिर थानेदार को यह हुक्म मिला कि अगर लड़कियों के मरने का समाचार मिले तो उसकी तहकीकात करें और अगर मौत के कारण सन्देहजनक हों तो लड़की का शरीर सिविल–सर्जन के पास मुआयना के लिए भेज दिया जाए। तहसीलदार और थानेदार दोनों को यह हुक्म दिया गया कि वह मिलकर काम करें और उन्हें यह आशा दिलाई गई कि अगर उनकी कोशिशों से यह जुर्म बन्द हो गया तो सरकार उनकी खैरख्वाही के लिए इनाम देगी। निम्नलिखित घटना से स्पष्ट हो जाएगा कि उस समय इन बातों का क्या असर पड़ा था –

10 दिस्मबर को एक ठाकुर के यहाँ एक लड़की पैदा हुई। इसकी रिपोर्ट थाने में फौरन हो गई। जमादार को हुक्म हुआ कि जाकर बच्चे को देख आवे। जमादार को रास्ते में दाई मिल गई, जो कि थानेदार को लड़की की पैदाइश की इत्तला देने जा रही थी। दोनों साथ–साथ वापस आए और जब लड़की के ऊपर से चद्दर उठाई तो उन्हें मालूम हुआ कि लड़की मर गई है। दाई ने बयान दिया कि जब वह गई थी तब लड़की अच्छी–खासी थी। उसके जाने के बाद किसी ने उसे जहर दे दिया होगा। घर वाले कहने लगे कि लड़की को जमोगा हो गया।

फौरन ही ये लोग गिरफ्तार कर लिए गए और नौकरानी के साथ थाने लाए गए। लड़की का शरीर सिविल–सर्जन के पास भेजा गया। नौकरानी ने पहले तो इन्कार किया, किन्तु आखिर में यह कुबूल कर लिया कि लड़की की दादी ने मदार का दूध लाकर बच्ची को उस समय पिला दिया था जब दाई थाने चली गई थी। उसने यह भी बयान दिया कि लड़की की माता पहले तो मदार का दूध देने पर राजी नहीं हुई, किन्तु पति के अनुरोध पर चुप रही। सिविल सर्जन ने भी यह बयान दिया कि लड़की के पेट में मदार का दूध था, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। मुकदमा सेशन जज को सुपुर्द कर दिया गया और मुलजिमों को सजा मिली। उस परगने में इसका यह प्रभाव पड़ा कि फिर और कोई लड़की को मारने की हिम्मत नहीं कर सका। इसका परिणाम यह हुआ कि 1840 ई. में जिन राजपूतों में एक लड़की भी नहीं पाई जाती थी, नवम्बर 1842 ई. में, इलाहाबाद जिले में उन्हीं जातियों में 42 लड़कियाँ जिन्दा थीं और 1852 ई. तक यह संख्या 100 तक पहुँच गई।

मैनपुरी में क्या हुआ?

1838 ई. में उत्तरी भारत में बड़ा भयंकर अकाल पड़ा। इसके प्रकोप से 10 हजार प्रतिदिन के हिसाब से हिन्दुस्तानी लोग मरे। नदियाँ मृतक शरीरों से पटी पड़ी थीं। माताएँ अपने बच्चों को जिन्दा पानी में डाल देती थीं, ताकि उन्हें अपने बच्चों की मरण–यन्त्रणा न देखनी पड़े। कुछ ने अपने बच्चे बेचकर रोटी खायी। सारांश यह कि उस समय देश की बड़ी भयंकर हालत थी।

मि. आनविन उस समय मैनपुरी में मजिस्ट्रेट थे। उनको उस वक्त अकाल के सम्बन्ध में मर्दसुमारी करनी पड़ी और तब उन्हें यह पता चला कि चौहान राजपूतों में एक भी लड़की, छोटी या बड़ी नहीं पाई जाती है और यह भी पता चल गया कि चौहान लोग अपनी लड़कियाँ मार डाला करते हैं। इसलिए मि. आनविन ने यह इन्तजाम किया कि जब किसी चौहान के यहाँ लड़की पैदा हो तो पैदाइश की इत्तला फौरन थाने पर की जाए। थाने का एक चौकीदार फौरन जाकर बच्चे को देख आवे। महीनेभर के बाद फिर बच्चे के सेहत का हाल थाने में भेजा जाए। अगर लड़की बीमार पड़ जाए तो बड़ा अफसर लड़की का मुआयना करे। अगर लड़की मर जाए और यह शक हो कि शायद जहर देकर मारी गई है तो शरीर सिविल–सर्जन के पास मुआयने के लिए भेजा जाए। इस प्रबन्ध का यह असर हुआ कि चौहानों के यहाँ लड़कियाँ बचने लगीं। सन् 1845 ई. मैनपुरी के चौहान राजा के यहाँ एक लड़की पैदा हुई।

इसकी घोषणा गवर्नमेंट गजट में की गई और लाटसाहब ने एक खिलअत और बधाई राजा साहब के पास भेजी। सन् 1838 ई. में चौहान जाति में एक भी लड़की नहीं थी लेकिन सन् 1845 ई. तक 57 लड़कियाँ बचाई जा चुकी थीं, सन् 1846 ई. में ये बढ़कर 161 हो गईं और सन् 1851 में 6 वर्ष से कम की अवस्था की सन् 1480 लड़कियाँ चौहानों में पाई गईं।

सन् 1842 में यही तरीका इटावा के ठाकुरों के यहाँ काम लाया गया।

विवाह

अब जब लड़कियाँ बड़ी होने लगीं और उनके विवाह का समय आया, उस समय विवाह में फिजूलखर्ची

कम करने के लिए बहुत कोशिशें हुईं। मजिस्ट्रेट ठाकुरों और चौहानों को बुलाकर उनसे इकरार करा लेते थे कि वह शादी में दहेज ज्यादा न लेंगे।

शिशु–हत्या को रोकने के लिए जो उपाय और साधन काम में लाए गए, उनमें मैनपुरी के चौहानों की सभा–जोकि 1851 के अन्त में हुई थी– बड़ा महत्व रखती है। यह सभा मैनपुरी के मजिस्ट्रट मि. चार्ल्स रेकीज ने निमन्त्रित की थी और 12 नवम्बर, सन् 1851 को सुभाओं गाँव में हुई थी। चौहानों ने मिलकर निम्नलिखित प्रस्ताव पास किए थे–

1. विवाह का दहेज आदमी की हैसियत देखकर ही निश्चित किया जाए।

2. अगर लड़की का पिता निश्चित दहेज से ज्यादा रूपये देना चाहता है तो दे, लेकिन अगर लड़के का पिता निश्चित दहेज से ज्यादा रूपए माँगता है और समझने से नहीं मानता, तो उसको बिरादरी से निकाल देना चाहिए।

3. ब्राह्मण, भाट, नाई और अन्य जाति के लोग लड़के–लड़की वालों को फिजूल रूपए खर्च करने के लिए उत्साहित करते हैं और अगर कोई खर्च नहीं करता तो उसकी निन्दा और उपहास करते हैं। इसलिए यदि इस प्रकार से फिर कोई निन्दा करें, तो मजिस्ट्रेट की अदालत से इनको दण्ड दिलाया जाए।

4. बारात में आने वालों की संख्या सीमित हो।

इन प्रस्तावों के अनुसार विवाह का खर्च होने लगा और चूँकि सरकार सहायता दे रही थी, इसलिए सफलता भी काफी मिली। एक अर्जी से, जो नीचे उद्धृत की जाती है, स्पष्ट हो जाएगा कि इन प्रस्तावों का और सरकार की सहायता का चौहानों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा–

अर्जी की नकल

''गरीब परवर सलामत,

''फिदवी राजपूतों की सभा में मौजूद था। उस समय फिदवी ने आप से अर्ज किया था कि मेरी भतीजी की शादी होने वाली है। इस पर हुजूर ने कहा था कि, शादी खत्म हो जाने पर उसका पूरा हाल तफसीलवार दिया जाए।''

''सभा के निश्चय के अनुसार, किन्तु पुरानी रस्मों के विपरीत मुझमें और लड़के के पिता की शादी के समय कोई भी दहेज नहीं बँधा था। हालाँकि लड़के के पिता ग्वालियर का रहने वाला था। मैंने उससे विवाह सम्बन्धी सभा के निश्चयों और सरकार के आदेशों का वर्णन किया, जिसको सुनकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और यह कहकर कि यह निश्चय राजपूत जाति के लिए हितकर है, मेरे यहाँ बिना दहेज बाँधे शादी करने पर राजी हो गया, इसलिए मैंने अपनी हैसियत के अनुसार लगुन के दिन और टीका के दिन 400/– नकद, तीन घोड़े और एक ऊँट दिया। दरवाजे के दिन मैंने 200/– रूपये, 2 घोड़े दिए और कन्यादान के दिन 100–नकद दिया।

''हुजूर की कृपा से शादी में कुल 700/– खर्च हुए और लड़के का पिता सन्तुष्ट भी रहा। रैसीयालहुग संस्कार, जिसमें पहले कम से कम 500/– लगते थे, मैंने बिलकुल ही नहीं किया। सरकार की सहायता से ही खर्चे में इस कदर कमी की जा सकी है। इसके पहले मैंने अपनी बहिन की शादी की थी, जिसमें मुझे घोड़े और ऊँटों के अलावा 17000/– सतरह हजार रूपये नकद देने पड़े थे और जिनको अदा करने के लिए मुझे अभी तक तकलीफें उठानी पड़ रही हैं।''

''बहिन की शादी पर भाट और फकीर लोगों ने इकट्ठा होकर मुझे बहुत दिक किया था। इस मर्तबा मैंने थानेदार को इत्तला कर दी थी, जिससे बहुत से भाट और फकीर लोग निकाल दिए गए। वृद्ध भाटों को मैंने 10–12 रूपये देकर रूखसत कर दिया। लड़के के पिता को भाटों ने दिक नहीं किया। पहले तो यह होता था कि जो कुछ दैजा से प्राप्त होता था भाट लोगों को इनाम और बख्शीश में ही खतम हो जाता था, किन्तु इस मर्तबा उसे कुछ भी नहीं देना पड़ा।''

''मैं आपका सबसे ज्यादा कृतज्ञ तो इसलिए हूँ कि अपने भाटों की उस निन्दनीय प्रथा को एकदम बन्द कर दिया, जिसके अनुसार भाट लोग बाँस में गुड्डे–गुड्डियाँ बाँध कर उन्हें दूल्हा–दुलहिन के माता–पिता कहकर नचाया करते थे और घृणित गालियाँ दिया करते थे।''

''वाजिब था अर्ज किया। आपकी समृद्धि और सौभाग्य का सूर्य सदा चमकता रहे।''

अरीजे फिदवी,
कुँवर गजाधरसिंह,
मौजा भौरासर–मुस्तफाबाद
ता. 20 जून, सन् 1852 ईस्वी

इसके अलावा उत्तर पश्चिमी प्रान्त के गवर्नर मि. टॉम्सन ने भारत के समस्त राजपूतों के नाम एक महत्वपूर्ण पत्र भी प्रकाशित किया था और हिन्दी में यह हजारों की संख्या में बाँटा गया था।

आगरे में शिशु–हत्या

आगरा जिले में शिशु हत्या भदोरिया, मेलकिया, कूलिया और कुँवर जाति के राजपूतों में बड़े जोरों से जारी थी। यह राजपूत जातियाँ सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थीं, इसलिए यह अपनी लड़कियों को जिन्दा रखना अपने वंश के लिए अपमानजनक समझती थीं। इन लोगों के यहाँ दहेज भी ज्यादा नहीं देना पड़ता था और न भाँड़ लोग ही बहुत परेशान करते थे। इनके अपनी लड़कियों को मार डालने का कारण यह था कि यह जाति अभिमानवश रजवाड़ों में ही शादी कर सकते थे, जिसके लिए जाहिर है, बहुत रूपए की जरूरत पड़ती थी।

अंग्रेजी सरकार को आगरे में इस पापपूर्ण–प्रथा के प्रचलित होने का समाचार 1851 में मिला। मि. गॉबिन्स उस समय इस जिले के मजिस्ट्रेट थे। इन्होंने तहकीकात करके ऐसे गाँवों की एक फेहरिस्त बनवाई, जहाँ शिशु–हत्या किए जाने का सन्देह किया जाता था। फिर यह कायदा बनाया गया कि, ऐसे गाँवों के ठाकुरों के यहाँ लड़की पैदा होने पर गाँव की दाई जाकर बच्चे को देखे और कॉन्स्टेबल के पास उसकी रिपोर्ट दे। कॉन्स्टेबिल चौकीदार से बतावे, चौकीदार पटवारी के यहाँ लिखावे और लड़की हो तो थानेदार को भी इत्तला होनी चाहिए।

इन नियमों का यह असर हुआ कि जिन गाँवों में सन् 1841 ई. के पहले एक भी लड़की नहीं पाई जाती थी, वहाँ सन् 1851 ई. और सन् 1854 ई. के दरमियान लड़कियों की संख्या 13 फीसदी बढ़ गई। एक गाँव में 60 फीसदी और एक जगह तो 85 फीसदी लड़कियाँ इन्हीं तीन वर्ष के अरसे में बढ़ गई थीं। मि. गॉबिन्स ने एक तमगा भी बनवाया था, जिसमें लिखा था–

''परमात्मा तुम्हारा रक्षक है।'' यह तमगा हर एक उस लड़की को दिया जाता था, जो शिशु–हत्या करने वाले कुटुम्ब में पैदा होती थी।

यह तो संयुक्त प्रान्त में शिशु–हत्या की उत्पत्ति और दमन का एक साधारण सा इतिहास है। भारत के अन्य प्रान्त भी इस पापपूर्ण–प्रथा से कलुषित थे।

पंजाब में शिशु–हत्या

पंजाब प्रान्त में शिशु–हत्या की निन्दनीय प्रथा का काफी प्रचार रहा था। क्या हिन्दू और क्या मुसलमान, सभी इस कुत्सित–प्रथा के दोषी रह चुके हैं। हिन्दुओं में कुटच वंश के राजपूतों में यह प्रथा प्रचलित थी। यह वंश बहुत प्राचीन और सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है। काँगड़ा–नरेश इस वंश के प्रमुख थे और राजपूतों में और कोई खानदान इनकी बराबरी का नहीं था। मुनहा वंश भी, जो सतलुज से झेलम तक फैला हुआ है, शिशु–हत्या करता था। गुरदासपुर, स्यालकोट और गुजरात के जिलों में यह लोग बहुत ऊँची जाति के समझे जाते थे, और इसलिए अपनी लड़कियों की नीच जाति में शादी करना अपमानपूर्ण समझकर, मुलहा और कुटच दोनों ही अपनी लड़कियों को मार डालते थे।

लोगों में यह प्रथा पाई जाती थी। वेदी सिक्ख, जो गुरूनानक के वंशज हैं, और सूदी, जो गुरू गोविन्दसिंह के वंशज हैं, दोनों ही अपनी–अपनी लड़कियाँ मार डालते थे। वेदियों के यहाँ कहा जाता है कि गुरूनानक के पौत्र धर्मचन्द वेदी के दो लड़के–मीरचन्द और नानकचन्द और एक लड़की थी। लड़की के जब विवाह का समय आया, उस समय एक खत्री के यहाँ इस लड़की की शादी तय हो गई। धर्मचन्द के घर का दरवाजा इतना छोटा था कि जब बारात धर्मचन्द के दरवाजे पर आई तो दूल्हे की पालकी उस दरवाजे में न जा सकी। बारातियों ने जबरदस्ती दरवाजा खोद डाला और पालकी अन्दर ले गए। घराती लोगों ने इस अपमान को सह तो लिया, किन्तु दिल में बड़े दुखी हुए। जब बारात रूखसत हुई, तो धर्मचन्द के दोनों लड़के विदा करने के लिए बारात के साथ चले। बाराती लोग नाराज थे, इसलिए उन लोगों ने सख्त गर्मी होते हुए भी दोनों लड़कों को बहुत ज्यादा दूर साथ ले आने के बाद वापस जाने को कहा। लड़के वापस घर लौटे, उनके पैरों में छाले पड़ गए थे। धर्मचन्द ने पूछा–''क्या बारातियों ने तुम्हें जल्दी लौट आने को नहीं कहा?'' लड़कों ने उत्तर दिया– ''नहीं।'' इस पर गुरू धर्मचन्द ने यह आज्ञा दी कि जिन कन्याओं के कारण वेदी जैसी पवित्र और उच्च जाति को नीच जाति के लोगों के हाथों इस प्रकार अपमान सहने पर मजबूर होना पड़ता है, उस कन्या–मात्र को ही कोई वेदी जिन्दा न रहने दे। लड़कों ने पूछा– ''शिशु–हत्या तो शास्त्रों में बहुत घृणित पाप समझा गया है।'' इस पर गुरू धर्मचन्द ने जवाब दिया–''अगर वेदी अपने धर्म पर पक्के रहे और झूठ बोलने और शराब पीने से दूर रहे तो उनके यहाँ लड़कियों का जन्म ही न होगा।'' इस प्रकार वेदी जाति ने 300 वर्ष तक अपनी लड़कियों की हत्या की है। अगर कोई वेदी प्रेमवश किसी लड़की को जिन्दा रहने देता था तो वह जाति से निकाल दिया जाता था।

एक दूसरी कथा भी इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है। गुरूनानक की तीसरी पीढ़ी में मेहरचन्द नाम के एक व्यक्ति की कन्या का विवाह बारी खत्रियों के यहाँ हुआ था। यह खत्री बहुत अमीर था, इसलिए वह फकीर–कन्या का सम्मान करने के बजाय फकीर के यहाँ जन्म होने पर उसे ताना दिया करता था और अनेक प्रकार से अपमानित करता था। लड़की ने अपने पिता से ससुराल में उसकी जो दुर्दशा होती थी, बयान की। पिता ने उत्तर दिया कि ऐसे जीवन से मर जाना बेहतर है। लड़की मर गई और उस फकीर ने उसी समय से यह नियम कर दिया कि वेदियों के यहाँ कन्याओं को जिन्दा न रखा जाए।

वेदी लोगों के यहाँ जब किसी बच्चे का जन्म होता था, उस समय दाई परदे के बाहर मर्दों को यह सूचना देती थी कि लड़का पैदा हुआ या लड़की। अगर लड़का पैदा होता था, तो उस समय बड़ी खुशी मनाई जाती थी। अगर लड़की हुई तो माता अपना मुख दीवाल की तरफ करके खड़ी हो जाती और घर की बड़ी–बूढ़ी आकर दाई को लड़की को मार डालने की आज्ञा दे देती थी। कभी तो दाई गला घोंट देती थी, लेकिन अक्सर उसे जाड़े में सर्दी में डालकर और गर्मी में धूप में डालकर मार डालते थे। वेदी लोग अक्सर लड़की के मुँह में गुड़ और हाथ में रूई की पूनी रख कर लड़की की लाश को दफना देते थे और यह कहते जाते थे–

''गुड़ खाइयाँ, पूनी कातियाँ।
आप न आइयाँ, भ्रावाँ नूँ घालियाँ।।

अर्थात

''गुड़ खाना, पूनी कातना।
खुद न आना, भाइयो अर्थात् लड़कों को भेजना।''

वेदी लोगों में यह प्रथा इतनी प्रचलित थी कि इन्हें 'कुड़ी–मार' (अर्थात लड़की को मारने वाला) कहा जाता था।

सूदी लोग गुरू गोविन्द सिंह के वंशज हैं। यह भी बहुत ऊँची जाति के समझे जाते हैं और अगर वेदी और सूदियों में मेल रहता तो आपस में विवाह हो सकता था, किन्तु यह दोनों जातियाँ अपने को एक–दूसरे से बड़े होने का दावा करती रहती थीं और एक–दूसरे को अपनी लड़की नहीं देती थीं। दोनों ही अपने यहाँ की लड़कियों को मार डालते थे।

मालवा सिक्खों में भी शिशु–हत्या प्रचलित थी। मंझा सिक्ख मालवा सिक्खों में से थे। वास्तविक खालसा सिक्ख यही हैं। ये बहुत वीर और प्रभावशाली थे। इनकी रियासतें बहुत शक्तिशाली थीं। अम्बाला और थानेर की दक्षिणी रियासतें इन्हीं की थीं। ये लोग भी लड़कियों की हत्या जायज समझते थे। यह लोग कहते हैं कि नाभा के एक राजा ने धोखे में अपनी लड़की का विवाह गिल वंश के एक लड़के के साथ कर दिया। जब उसे धोखा मालूम हुआ तो वह बड़ा दुखी हुआ, किन्तु आधी शादी हो चुकी थी, इसलिए शादी करने के लिए मजबूर था। किसी गिल या धारीवाल के मुँह से 'साला' कहलाने के अपमान को न बरदाश्त करने के लिए उन्होंने अपने वंश के लोगों को इकट्ठा करके यह निश्चय किया कि सब लोग अपनी–अपनी लड़कियाँ मार डालें।

लाहौरी और सूरी खत्रियों की दो जातियाँ भी इस प्रथा के अनुकरण से कलुषित रहीं हैं। लाहौरी अढ़ाई घर के होते हैं। इनके यहाँ शादी करना बहुत इज्जत की बात समझी जाती थी, इसलिए लाहौरी लोग खूब दहेज लेते थे और रुपए शादी के पहले ही वसूल कर लेने पर भी अक्सर आखिरी वक्त तक शादी नहीं करते थे, जिसके कारण लड़कियों के पिता का केवल सारा धन ही नहीं जाता रहता था, बल्कि इस शोक से अकसर उसकी मृत्यु भी हो जाती थी। अगर लड़की की शादी भी कर लेते थे और रूखसती भी करा ले जाते थे, तो उसको भूखी रखकर या किसी और रीति से उसको मार डालते थे, ताकि लड़के की दूसरी शादी हो और फिर अच्छा दहेज मिले। डेरा गाजीखाँ के आस–पास रहने वाले गुसाईं, भोदल ब्राह्मण भी इसी प्रथा के शिकार थे।

मुसलमानों में, डेरा गाजीखाँ के खाँ लोग, झेलम के तट पर रहने वाले गूठले और डोंगरे भी केवल अपनी लड़कियों को नीच घरों में न देने की वजह से उनकी हत्या किया करते थे। डोगरों में लड़कियों को मारने का एक कारण यह भी था कि इनके यहाँ भी शादी में बहुत ज्यादा खर्च करने की प्रथा मौजूद थी। जैसे हिन्दुओं में भाट और चारण लोग प्रशंसा और निन्दा का लोभ और भय दिखाकर लड़के वाले और लड़कियों वालों से रुपए वसूल करते थे, वैसे ही इनके यहाँ मिरासी लोग खूब रुपए वसूल करते थे। रूखसत के वक्त और बारात के आने के वक्त डोले पर रुपए लुटाने की प्रथा भी इनके यहाँ बहुत ज्यादा थी, जिसके कारण लड़कियों की शादी में बहुत ज्यादा खर्च हो जाता था। जाति–गौरव के उन्माद में और विवाह में खर्च की भयंकरता के कारण ही डोंगरे लोगों में शिशु–हत्या का बहुत प्रचार था।

सन् 1846 ई० के पहले अंग्रेजों का पंजाब के शासन में बहुत ज्यादा हस्तक्षेप नहीं था। अम्बाला में एक पोलिटिकल एजेंट रहता था और लुधियाना में उसका सहकारी पोलिटिकल एजेंट रहता था। सन् 1846 ई. के पहले अंग्रेज शासकों की ओर से केवल शिशु–हत्या के विरूद्ध घोषणाएँ ही निकला करती थीं। उसके दमन के लिए कोई वास्तविक काम उस समय तक आरम्भ नहीं हुआ, जब तक पंजाब का शासन बिलकुल अंग्रेजों के हाथ में नहीं आ गया।

जैसा कि पहले बताया गया है, वेदियों के यहाँ शिशु–हत्या का बहुत प्रचार था। इसलिए पंजाब के अंग्रेजों के अधिकार में आने पर, पहले–पहल इस प्रथा को मिटाने का काम वेदी खत्रियों में शुरू किया गया। जालन्धर के डिप्टी कमिश्नर कैप्टन फैरिंगटन ने मि. डी. एफ. मिन्वोड के सभापतित्व में मैनपुरी के समान ही, 4 अप्रैल, सन् 1846 ई. में हिन्दुओं के तीर्थस्थान हाई तालाब पर, जो जालन्धर के निकट ही है, वेदी खत्रियों की एक सभा की। इस सभा में बौंजाई खत्री भी निमन्त्रित किए गए। बौंजाई खत्री और वेदी खत्री दोनों एक ही घराने के हैं, किन्तु बाबा नानक के बाद बाबा नानक के वंशजों ने अपने आपको वेदी के नाम पर बिलकुल अगल कर लिया था। बौंजाई खत्रियों को निमन्त्रित करने का कारण यही था कि वेदी खत्रियों की कन्याओं का विवाह बौंजाई खत्रियों में ही हो सकता था। इस सभा में क्या हुआ, वह इस सभा में निश्चित इकरारनामे के चन्द वाक्यों से प्रकट हो सकता है। वह चन्द वाक्य ये हैं–

''यह निर्विवाद सिद्ध है कि वेदी और बौंजाई खत्री प्राचीनकाल से एक ही घराने के हैं, किन्तु बाबा नानक के समय से वेदी खत्रियों ने पुरोहती का काम ले लिया और बौंजाई खत्रियों से अलग हो गए। इन दोनों में आपस में कुछ मनोमालिन्य भी पैदा हो गया। वेदी खत्रियों ने लड़कियों का मारना आरम्भ कर दिया, किन्तु वेदी और बौंजाई में आपस में मित्रता, संसर्ग और व्यवहार कायम रहा। चूँकि अंग्रेजी राज्य में शिशु–हत्या घोर अपराध है, इसलिए हम लोगों ने स्वतन्त्रतापूर्वक और गवर्नमेंट की इच्छानुसार भी, इस निन्दनीय प्रथा को त्याग दिया है और अब हमारे लिए यह आवश्यक हो गया कि हम बौंजाई खत्रियों से पुराने, किन्तु साधारण मनोमालिन्य को हटा लें और उनमें अपनी कन्याओं के विवाह का प्रबन्ध करें।''

होशियारपुर के डिप्टी कमिश्नर ने 21 अप्रैल को इसी प्रकार की एक सभा अपने जिले में की। इसमें उन्होंने पहाड़ी के रहने वाले राजपूतों को निमन्त्रित किया था। इस सभा में विवाह के अपव्यय पर बहुत विचार हुआ और राजपूतों ने भी शिशु–हत्या त्यागने और विवाह के अपव्यय को बन्द करने की प्रतिज्ञा की।

उस समय विवाह के अपव्यय का पता इस बात से चल सकता है कि महाराणा रणजीत सिंह के पोते कुँवर नवनिहालसिंह के विवाह में 17 लाख रुपए खर्च हुए थे। अलहोवालिया के राजा के विवाह में 8 लाख रुपए खर्च हुए थे। राजा तेजसिंह ने अपनी भतीजी के विवाह पर एक लाख खर्च किया था और उसकी शादी की थी सहारनपुर के एक दरिद्र ब्राह्मण के यहाँ।

एक ओर तो जिले के डिप्टी कमिश्नर अनेक जाति की सभा करके इस निन्दनीय प्रथा को नष्ट करने का शान्तिपूर्वक अनुरोध करते थे और दूसरी ओर भारत सरकार ने मि. मोन्टगोमरी को इस प्रथा का विस्तार और इसके दमन के साधनों की तहकीकात के लिए मुकर्रर किया था। थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपनी रिपोर्ट सरकार के सामने पेश की और उसमें उन्होंने कई एक महत्वपूर्ण तजवीजों के साथ–साथ अपनी यह राय जाहिर की कि शिशु–हत्या को भी अन्य हत्याओं के समान जुर्म करार दिया जाए। लोगों की शादी–विवाह के समय किफायत करने की प्रेरणा दी जाए, भाट तथा मिरासियों को बारातों के नजदीक भी न जाने दिया जाए, एक सभा समस्त पंजाब निवासियों को बुलाकर की जाए, जिसमें शिशु–हत्या को एकदम बन्द करने की लोगों से प्रतिज्ञा ली जाए और दहेज में किफायत से रुपए खर्च करने की प्रथा चलाई जाए।

भारत सरकार ने इस रिपोर्ट के बाद निम्नलिखित घोषणा सारे पंजाब में करा दी –

''चूँकि गवर्नर जनरल को यह मालूम हुआ है कि पंजाब की चन्द कौमों में लड़कियों को पैदा होते ही या पैदा होने के बाद मार डालने की प्रथा पाई जाती है, इसलिए निम्नलिखित आज्ञा जनता को इत्तला के लिए और अमल करने के लिए दी जाती है, और इस निन्दनीय प्रथा को बन्द करने के लिए, जोकि ईश्वर की नजरों में पाप है और मनुष्यों के लिए घृणित है, यह हुक्म दिया जाता है कि –

(1) ''अगर कोई ईश्वर और सरकार के हुक्म के खिलाफ शिशु–हत्या करेगा, तो उसे कत्ल करने की सजा दी जाएगी।

(2) ''यह अपराध वेदियों में बहुत प्रचलित था, किन्तु कुछ व्यक्तियों ने पिछले दिनों से इसे त्याग दिया है। इस बात से गवर्नर महोदय को बड़ा सन्तोष हुआ है और वह आशा करते हैं कि समस्त वेदी लोग इस प्रथा को एकदम त्याग देंगे और सच्चाई का रास्ता ग्रहण करेंगे, वरना जो कुटुम्ब इस प्रथा का अनुकरण करेगा, उस पर केवल कत्ल की ही सजा न केवल जायज समझी जाएगी, बल्कि उसकी तमाम जागीर और पेन्शन भी बन्द कर दी जाएगी।''

(3) ''जो परमात्मा और सरकार का भय करते हुए इस प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न करेगा, उसे भारत के गवर्नर महोदय इनाम और खिताब देंगे।

(4) ''विदित हो कि कार्तिक के महीने में, दिवाली के दिनों में, अमृतसर में पंजाब के बड़े–बड़े अंग्रेज अफसरों, राजाओं, सरदारों और अन्य प्रतिष्ठित सज्जनों की एक सभा। शिशु–हत्या की प्रथा को नष्ट करने के साधना पर विचार करने के लिए होगी। जो लोग इस सभा में शामिल होना चाहते हैं, वे उक्त समय और स्थान पर निमन्त्रित किए जाते हैं।''

अमृतसर की सभा में पंजाब की सब जातियों के लोग मौजूद थे। वालियान रियासत के खुदमुखतार राजा जम्बू और काँगड़ा के बड़े–बड़े राजपूत, डेरा, नानक और गोगेरा के धनवान वेदी, ब्राह्मण, खत्री और मुसलमान, व्यापारी और नागरिक, कृषकों और व्यवसायियों के प्रतिनिधि हर एक जिले से आकर इस सभा में शामिल हुए। यह सभा तीन दिन तक बड़ी धूमधाम से चली।

सभा के पहले दिन की कार्रवाई यह थी कि कमेटियों का संगठन किया गया। होशियारपुर और जालन्धर में जो सभाएँ हुई थीं, उनके प्रस्तावों को स्वीकार किया गया और इन्हीं के आधार पर इस दिन की सभा का कार्यक्रम बनाया गया।

जो कुछ पहले दिन निश्चित हुआ था, अर्थात् शिशु–हत्या को बन्द करने और विवाह में किफायत करने के प्रस्ताव, दूसरे दिन भिन्न–भिन्न जातियों के प्रतिनिधियों को उनके प्रमुख द्वारा सुनाये गए और सारे डेलीगेटों ने उन प्रस्तावों पर विचार किया और अपनी राय प्रकट की। राजपूत, वेदी, खत्री, मुसलमान सभी जातियों की अलग–अलग जातीय सभाएँ उन प्रस्ताव पर विचार करने और उन पर अमल करने के साधनों पर गौर करने के लिए होने लगीं। राजा दीनानाथ और राजा साहब दयाल, ब्राह्मण और खत्रियों की सभा के प्रभुवर थे। सरदार शमशेरसिंह और मेहताबसिंह, सिन्दयानवाला और मजीठिया वंश के मुखिया थे। जाट सिक्खों की सभा के नेता सरदार कृपासिंह, सरदार जोधसिंह थे। नवाब इमामउद्दीन खाँ मुसलमानों की सभा के नेता थे। भिन्न–भिन्न उपजातियों की उपसभाएँ 5 घण्टे तक बराबर हुई।

5 घण्टे के विचार के बाद हर एक जाति की ओर से, हैसियत के अनुसार विवाह–दहेज की मात्रा निश्चित हुई। ज्यादातर तीन या चार दर्जे के दहेज तय हुए। कम से कम और ज्यादा से ज्यादा दहेज की मात्रा तय कर दी गई। ब्राह्मण की दक्षिणा, नाई, बारी और अन्य प्रजा के इनाम भी मुकर्रर कर दिये गए। दावतों का खर्चा भी निश्चित कर दिया गया और सभी ने इन निश्चयों के अनुसार काम करने की प्रतिज्ञा की।

तीसरे दिन की सभा में सब जातियों के लोग एकत्रित हुए। राजा, महाराजा, सरदार, व्यापारी, कृषक, सिख, हिन्दू, मुसलमान इत्यादि सभी ने एकमत होकर, एक स्वर से शिशु–हत्या की प्रथा का एकदम नाश कर देने की दृढ़ प्रतिज्ञा ली। स्वतन्त्र राजाओं ने भी इस बात का वचन दिया कि वह अपनी रियासत में इस प्रथा को नष्ट करेंगे।

अमृतसर की सभा के बाद हर एक जिले में अमृतसर के स्वीकृत प्रस्तावों का प्रचार और स्वीकृति के लिए सभाएँ होने लगी। गुजराँवाला, रावलपिण्डी, झेलम, शाहपुर, मुल्तान आदि स्थानों में, थोड़े ही दिनों में अमृतसर–सभा के प्रस्तावों को स्वीकार कराने के लिए सभाएँ हुईं और इस प्रथा को नष्ट करने का जनता की ओर से और सरकार की ओर से भी बहुत काम होने लगा।

निम्नलिखित अंकों से ज्ञात होगा कि यह प्रथा धीरे–धीरे कैसे कम होती गई–

वेदी–जाति के बच्चों की पैदाइश व मृत्यु का नक्शा (सन् 1848 से दिसम्बर सन् 1854 तक)

सन्	लड़के-लड़कियाँ जो पैदा हुए		जो मर गए		ज़िन्दा	
	लड़के	लड़कियाँ	लड़के	लड़कियाँ	लड़के	लड़कियाँ
1847-48	27	12	13	4	14	8
1848-49	37	17	9	7	28	10
1849-50	37	14	13	8	24	6
1850-51	33	21	13	9	20	12
1851-52	18	18	8	7	10	11
1852-53	22	16	7	7	15	9
1853-54	27	29	10	5	17	14
1854-55	20	33	3	5	17	28

सियालकोट जिले में

सन्	शादी जिनमें दहेज कम किया गया	खर्च	जो पहले खर्च हुआ था
1854	537	18,086-10-0	49,061-8-0
1855	2,325	38,996-4-0	85,062-8-0

पश्चिमी भारत में भी शिशु–हत्या स्थान–स्थान पर प्रचलित थी, काठियावाड़, कच्छ में राजपूत, हिन्दू और जैनी लोग सभी इस कुप्रथा को मानते थे। काठियावाड़ में जदेजा नाम की एक जाति इस कुप्रथा से विशेष रूप से पीड़ित थी। उस समय के लेखकों का विचार है कि यह जाति काठियावाड़ और कच्छ में ज्यादा नहीं तो कम से कम 5,000 बच्चों की प्रतिवर्ष जरूर हत्या करती थी। कुछ लोग समझते हैं कि 20 हजार बच्चे हर साल यहाँ मार डाले जाते थे। मारने का तरीका यह था कि औरतों को यह हुक्म था कि जब लड़की पैदा हो। उस समय उसे अफीम पिला दो या गला घोंट दो। ज्यादातर यही तरीके काम में आते थे। इस काम के लिए स्त्रियाँ ही मुकर्रर थीं। मर्द केवल आज्ञा दिया करते थे। कुछ लोग पैदा होने के बाद लड़कियों को बेपरवाही से छोड़ देते थे और वह इस कारण से मर जाया करती थीं। मार डालने का कारण भी वही था, जो भारत के अन्य प्रान्तों में पाया जाता था। यह जाति अपने को कृष्ण–वंशज समझती थी। इनसे उच्च कोई दूसरी जाति वहाँ नहीं रहती थी। अपने से नीची जाति के लड़कों के साथ अपनी लड़कियों का विवाह करना इनके लिए असह्य था।

एक किस्सा मशहूर है। यदुज–वंश में एक राजा हुआ था। उसकी कन्या बड़ी सुन्दर और सुशील थी। जब वह बड़ी हुई और उसके विवाह का समय आया तो राजा ने अपने राजगुरू को वर तलाश करने के लिए भेजा। गुरू ने बहुत दूर–दूर सफर लिया, किन्तु कहीं भी उन्हें उस कन्या के अनुरूप और योग्य वर न मिल सका। जहाँ धन और कीर्ति मौजूद थी, वहाँ चरित्र और सौन्दर्य का अभाव था, जहाँ चरित्र और सुशीलता थी, वहाँ दरिद्रता थी।

राजा अपनी कन्या को अपने से कम जाति, धन और कीर्ति वाले को नहीं देना चाहता था। परिणाम यह हुआ कि यह कन्या बहुत दिनों तक अविवाहित रही। राजा की बदनामी होने लगी। राजा ने राजगुरु को फिर बुलाकर उनकी सलाह पूछी। राजगुरु ने यही सलाह दी कि कन्या को मार डालो।

राजा अत्यन्त प्रेमवश और नरक–भय से हत्या करने पर राजी नहीं हुआ। राजगुरु ने इस काम की जिम्मेदारी स्वयं ली और इस कन्या को मारकर राजा की कीर्ति को मलिन नहीं होने दिया।

इस प्रकार की कथाएँ ऐतिहासिक हरगिज नहीं कही जा सकती, किन्तु इनसे इस कुप्रथा की उत्पत्ति का कारण जरूर मालूम हो जाता है। जैन तथा अन्य धर्म को मानने वालों को–अहिंसा में पूर्ण विश्वास करने वाले लोगों को–इसलिए अक्सर होता विवाह करते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। आनन्दगढ़ के मक्का जी कबीरपन्थी थे। विवाहित होते हुए भी ये ब्रह्मचर्य का पालन करते थे। इनको भय था कि कहीं ऐसा न हो कि लड़की पैदा हो जाए और उन्हें उसे मारने या अपने वंश को पतित करने का पाप उठाना पड़े। यदुजा में इस कुप्रथा को रोकने की कोशिश सन् 1808 से आरम्भ हुई। उस समय कठियावाड़ गायकवाड़ सरकार के अधीन था और अंग्रेजों का उस पर कोई अख्तियार नहीं था, इसलिए कर्नल बॉकर, जो उस समय इस प्रदेश में अपने राजनैतिक कार्य के साथ शिशु–हत्या को भी रोकने का इन्तजाम कर रहे थे, अधिकतर उस समय के राजाओं को ही इस प्रथा को मिटाने के लिए प्रेरित किया करते थे। जिस राजा के पास वह खत लिखते थे, वहीं से सूखा जवाब पाते थे। कोई भी यह प्रतिज्ञा नहीं करता था कि वह इस प्रथा को मिटा देगा। एक मुसलमान राजा का पत्र मैं नीचे उद्धत कर रहा हूँ, जिससे मालूम हो सकता है कि कर्नल बॉकर की कोशिशों को उस समय के राजागण किस दृष्टि से देखते थे। कर्नल बॉकर ने राव–कच्छ की सेवा में वहाँ के प्रभावशाली दरबारी श्री फतहमुहम्मद के जरिये से शिशु–हत्या रोकने के सम्बन्ध में एक पत्र लिखा था। इसका जवाब उन्हें निम्नलिखित मिला –

''आपको मालूम होगा कि कृष्णावतार से यदुज लोग कृष्णवंशी से 4900 वर्ष से अपनी लड़कियाँ मारते आए हैं, और शायद आपको यह भी मालूम होगा कि हिन्दुस्तान के बड़े–बड़े शहंशाह–अकबर, औरंगजेब और शाहजहाँ ने इस बात में, अर्थात शिशु–हत्या के मामले में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा। खलीफा रूम ने भी, जिसकी सल्तनत मक्काशरीफ तक फैली हुई है, यदुजों की इस मर्यादा को तोड़ना उचित नहीं समझा, बल्कि इसके विपरीत इस दरबार में मित्रता बनाए रहे। लखपति और करोड़पति लोग भी इस कुप्रथा के खिलाफ एक अक्षर भी नहीं कहते। लेकिन आप कम्पनी सरकार के अमीर होकर इस तरह से लिखते हो, जिससे हमको बहुत बुरा मालूम हुआ है।

''यह दरबार हमेशा कम्पनी से मित्रता बनाये रहा है, लेकिन इतने पर आपने यह अनुचित बात की, जो इस मजमून का खत हमें लिखा। ईश्वर देने वाला है और ईश्वर छीन लेने वाला है। अगर किसी का जमाना बिगड़ जाए तो परमात्मा के कोप से ही होता है। इस दरबार से आज तक जो लड़ा, उसने नुकसान उठाया। दरबार किसी से द्वेष नहीं रखते और न किसी से लड़ने जाते हैं। इसलिए मेरे पास इस मजमून का खत आइन्दा हरगिज न भेजियेगा।''

कर्नल बॉकर ने खत में शायद शिशु–हत्या के अतिरिक्त कुछ और भी बातें थीं। शायद कच्छ–दरबार यह समझे कि अंग्रेज लोग उनके राज्य में धीरे–धीरे अपनी इच्छा के अनुसार शासन कराना चाहते हैं, किन्तु अगर पत्र केवल शिशु–हत्या के रोकने के लिए ही था, तो जाहिर है कि उस समय इस कुप्रथा का प्रभाव कितना प्रबल था।

किन्तु कर्नल बॉकर की लगातार कोशिशों के बाद इतना मुमकिन हुआ कि कच्छ राजाओं ने गायकवाड़ और अंग्रेजी सरकार से यह प्रतिज्ञा की कि लोग शिशु–हत्या कभी भी नहीं करेंगे, किन्तु कर्नल बॉकर के चले जाने के बाद यह प्रतिज्ञा अच्छी तरह से पालन नहीं हुई। कोई अपनी लड़कियों को बचाये रखता था और कोई मार डालता था। मारने वालों को दण्ड देने का काम गायकवाड़ सरकार का था, किन्तु ये सरकार इस पर ज्यादा ध्यान नहीं देती थी। कर्नल बॉकर के बाद गायकवाड़ सरकार के दरबार में रेजीडेंट की हैसियत से कई अंग्रेज अफसर आए, किन्तु उन्होंने न तो इस विषय पर ज्यादा ध्यान दिया और न इसमें ज्यादा सफलता प्राप्त की, क्योंकि कर्नल बॉकर के बाद बम्बई की अंग्रेजी सरकार को यह विश्वास हो गया था कि यदुज लोग स्वयं इस अमानुषिक प्रथा का नाश कर देंगे, किन्तु जब यह भ्रम दूर हो गया, तो एल्किन्सटन और लॉर्ड क्लेटर के समय में ज्यादा जोरों से इस पर काम शुरू हुआ। शिशु–हत्या करने वालों पर जुर्माना किया जाता, उनको हर तरह से जलील करने की कोशिश होती थी, किन्तु सन् 1831 से, जब से मि. जॉन बिलोवी काठियावाड़ से पोलिटिकल एजेंट हुए, इस काम में बहुत तेजी आ गई।

मि. बिलोवी ने काफी खोज करने के बाद और पश्चिमी भारत की स्थिति को अच्छी तरह समझने के बाद बम्बई गवर्नमेंट के सामने कई बातें पेश कीं। उनमें से मुख्य बातें यह थीं –

अंग्रेजी गवर्नमेंट की तरफ से यह घोषणा कर दी जाए कि जो कोई अपनी लड़की मारेगा, उसको सख्त दण्ड दिया जाएगा और जो अपनी लड़की जिन्दा रखेगा, उसे इज्जत दी जाएगी। जो लोग शिशु–हत्या होने का समाचार सरकार को पहुँचाएगे, उन्हें इनाम मिलेगा। जाम के खिलाफ इत्तला देने वाले को 1000/– रूपये, साधारण राजा के खिलाफ इत्तिला देने वाले को 500/– रूपये रिश्तेदार के खिलाफ इत्तला देने वाले को 250/– रूपए किसी गरीब यदुज के खिलाफ इत्तला देने वाले को 100/– रुपये इनाम देने की सलाह दी। साथ ही साथ यह भी तजवीज थी कि अगर निजाम इस जुर्म के सजावार समझे जावें, तो उन पर 30,000/– रुपए साधारण राजा पर 10,000/– रुपए बड़े आदमी पर 2,500/– रुपए और गरीब पर उसकी हैसियत के मुताबिक जुर्माना किया जाए। जुर्माने से वसूल हुआ रुपए

सेवा में,

नाम .....

पता .....

.....

.....

उन लोगों की सहायता में खर्च हो, जिन्होने अपनी लड़कियों को बचा रखा है और उसके कारण उन्हें उसके विवाह में अधिक धन व्यय करना पड़ेगा। अगर कोई राजा अपनी लड़की बचावे और उसके विवाह के समय वह सरकारी रुपए से सहायता न लेना चाहे तो उसकी मालगुजारी में कमी कर दी जाए।

इन तजवीजों को बम्बई की अंग्रेजी सरकार ने बहुत पसन्द किया और बिलोवी साहब को इनको कार्यरूप में लाने के लिए इजाजत दे दी। घोषणा कर दी गई और घोषणा के विरूद्ध चलने वालों पर मुकदमा चलाने का अख्तियार मिल गया।

राजकोट के ठाकुर सूराजी इस घोषणा के पहले शिकार थे। इनके यहाँ लड़की पैदा हुई, जिसको इन्होंने मार डाला। उन पर 12,000/– रूपये का जुर्माना किया गया। मुकदमे के बयान में पण्डितों ने कहा कि जब बच्चा पैदा होने वाला हुआ, उस समय हम लोग बेला देखने के लिए गए थे, किन्तु जब यह सुना कि लड़की हुई है तो फौरन चले आए, क्योंकि लड़की पैदा होने पर दक्षिणा की कोई सम्भावना नहीं रहती। दोनों दासियाँ भी मौजूद थीं। उन्होंने कहा कि जिस समय लड़की मार डाली गई, माँ बहुत रोई, किन्तु ठाकुर सूराजी में कुछ नहीं कहा, क्योंकि एक दफा बड़ी रानी ने एक लड़की बचा रखी थी, जिस अपराध में राजा ने उनके पास जाना एकदम त्याग दिया था।

इसी तरह बिलोवी साहब ने रूपए 1834 में कई मुकदमें उन लोगों पर चला दिये, जो घोषणा की अवहेलना करके लड़कियों को मार डालते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि आठ–दस मुकदमों के बाद सारे देश में सनसनी फैल गई और शिशु–हत्या एकदम बन्द हो गई। इसके बाद मि. बिलोवी ने काठियावाड़ के राजाओं के पास इस कुप्रथा को मिटाने के लिए चिट्ठियाँ भेजीं। इन चिट्ठियों का उत्तर बहुत सन्तोषजनक था और उस खत के लहजे से बिलकुल मुखतलिफ था, जो कच्छ के राजा की ओर से कर्नल बॉकर के पास आया था।

साभार – देवदासी, सती प्रथा और कन्या हत्या
पृष्ठ सं. 5 से 25, अतुल कृष्ण विश्वास

अशोका विजयादशमी एवं दीपदान उत्सव की हार्दिक शुभकामनाए .....

मोर पाल सिंह

रिजनल मार्केटिंग मनैजर, यू.पी. हैण्डलूम, लखनऊ

अशोका विजयादशमी एवं दीपदान उत्सव की हार्दिक शुभकामनाए .....

लक्ष्मी नारायण

प्रशासनिक अधिकारी

प्रावि० शिक्षा निदेशालय, उ.प्र., कानपुर

मो0: 9450152297

शोक सन्देश

अनिल कुमार शाक्य

कैशियर सी.बी.ओ.–2, एल.आई.सी., रतनलाल नगर, कानपुर

कमलेश यादव

अनुदेशक आई.टी.आई., पाण्डु नगर, कानपुर

दूधनाथ

नगर निगम, कानपुर